वर्ष ४७] [अङ्क २

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५७,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९८, फरवरी १९७३

चित्र-सूची

Free of charge] जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार । सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीलक्ष्मी-नारायण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
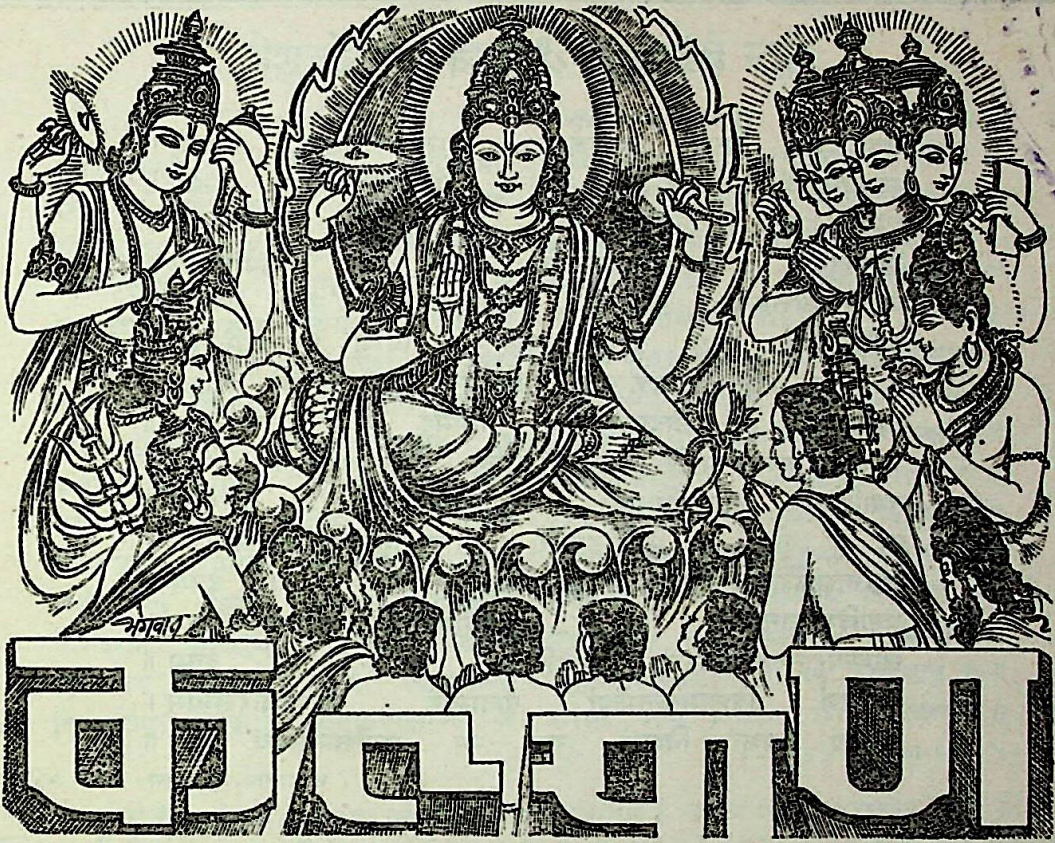
अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च। वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
(श्रीविष्णुपुराण १।२।१-२)

वर्ष ४७ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९८, फरवरी १९७३ { संख्या २ पूर्णसंख्या ५५५

श्रीलक्ष्मी-नारायणकी वन्दना

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते। महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये॥
यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा। जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान् प्रभुः॥
विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे। प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते॥
(श्रीमद्भागवत ६।१९।४-६)

'प्रभो! आपको किसी बातकी कमी नहीं; कारण, आप निरपेक्ष हैं—नहीं, नहीं पूर्णकाम हैं। आपको प्रणाम है। आप महान् विभूतियोंके स्वामी और सकल सिद्धिस्वरूप हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप कृपा, विभूति, तेज, महिमा और वीर्य आदि ईश्वरोचित गुणोंसे नित्ययुक्त हैं; अतएव आप भगवान् हैं, सर्वशक्तिमान् हैं। माता लक्ष्मीजी! आप भगवान्‌की अर्द्धाङ्गिनी और महामायास्वरूपिणी हैं, सारे भगवद्गुण आपमें स्थित हैं। महाभाग्यवती जगन्माता! आप प्रसन्न हों, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

सर्वदेवकृत श्रीमहाविष्णुस्तुति

नताः स्म विष्णुं जगदेकनाथं स्मरत्समस्तार्तिहरं परेशम्।
स्वभावशुद्धं परिपूर्णभावं वदन्ति यज्ज्ञानतनुं च तज्ज्ञाः॥
ध्येयः सदा योगिवरैर्महात्मा स्वेच्छाशरीरैः कृतदेवकार्यः।
जगत्स्वरूपो जगदादिनाथस्तस्मै नताः स्म पुरुषोत्तमाय॥
यन्नामसंकीर्त्तनतः खलानां समस्तपापानि लयं प्रयान्ति।
तमीशमीड्यं पुरुषं पुराणं नताः स्म विष्णुं पुरुषार्थसिद्ध्यै॥
यत्तेजसा भान्ति दिवाकराद्या नातिक्रमन् यस्य कदापि शिक्षाः।
कालात्मकं तं त्रिदशाधिनाथं नमामहे वै पुरुषार्थरूपम्॥
जगत्करोऽस्त्यब्जभवोऽस्ति रुद्रः पुनन्ति लोकाञ्छ्रुतिभिश्च विप्राः।
तमादिदेवं गुणसंनिधानं सर्वोपदेष्टारमिताः शरण्यम्॥
वरं वरेण्यं मधुकैटभारिं सुरासुराभ्यर्चितपादपीठम्।
सद्भक्तसंकल्पितसिद्धिहेतुं ज्ञानैकवेद्यं प्रणताः स्म देवम्॥
अनादिमध्यान्तमजं परेशमनाद्यविद्याख्यतमोविनाशम्।
सच्चित्परानन्दघनस्वरूपं रूपादिहीनं प्रणताः स्म देवम्॥
नारायणं विष्णुमनन्तमीशं पीताम्बरं पद्मभवादिसेव्यम्।
यज्ञप्रियं यज्ञकरं विशुद्धं नताः स्म सर्वोत्तममव्ययं तम्॥

(नारदपुराण, पू० प्रथम० १६ । ५४–६१)

जो जगत्‌के एकमात्र स्वामी तथा स्मरण करनेवाले भक्तजनोंकी समस्त पीड़ा दूर कर देनेवाले हैं, उन परमेश्वर श्रीविष्णुको हम नमस्कार करते हैं। ज्ञानी पुरुष उन्हें स्वभावतः शुद्ध, सर्वत्र परिपूर्ण एवं ज्ञानस्वरूप कहते हैं। श्रेष्ठ योगीजन जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो परमात्मा अपनी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करके देवताओंका कार्य सिद्ध करते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है तथा जो जगत्‌के आदिस्वामी हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको हम प्रणाम करते हैं। जिनके नामोंका संकीर्तन करनेमात्रसे दुष्ट पुरुषोंके भी समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं; जो सबके शासक, स्तवन करनेयोग्य एवं पुराणपुरुष हैं, उन भगवान् विष्णुको हम पुरुषार्थसिद्धिके लिये नमस्कार करते हैं। सूर्य आदि जिनके तेजसे प्रकाशित होते हैं और कभी भी जिनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते, जो सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर तथा पुरुषार्थरूप हैं, उन कालस्वरूप श्रीहरिको हम नमस्कार करते हैं। जिनकी आज्ञाके अनुसार ब्रह्माजी इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं, रुद्र संहार करते हैं और ब्राह्मण श्रुतियोंके द्वारा सब लोगोंको पवित्र करते हैं, जो गुणोंके भंडार और सबके उपदेशक–गुरु हैं, उन सबके शरण लेनेयोग्य आदिदेव भगवान् विष्णुकी हम शरणमें आये हैं। जो सबसे श्रेष्ठ, वरण करनेयोग्य तथा मधु और कैटभको मारनेवाले हैं, देवता और दैत्य भी जिनके चरण रखनेकी चौकीका पूजन करते हैं, जो श्रेष्ठ भक्तोंके अभीष्टकी सिद्धिके कारण हैं तथा एकमात्र ज्ञानद्वारा जिनके तत्त्वका बोध होता है, उन दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवान्‌को हम प्रणाम करते हैं। जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अजन्मा, अविद्या नामक अनादि अन्धकारका नाश करनेवाले, सत्-चित्-परमानन्दघनस्वरूप तथा रूप आदिसे रहित हैं, उन भगवान् परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं। जो जलमें शयन करनेके कारण 'नारायण', सर्वव्यापी होनेसे 'विष्णु', अविनाशी होनेसे 'अनन्त' और सबके शासक होनेसे 'ईश्वर' कहलाते हैं, जो अपने श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, जो यज्ञके प्रेमी, यज्ञ करनेवाले, विशुद्ध, सर्वोत्तम एवं अव्यय हैं, उन भगवान् विष्णुको हम नमस्कार करते हैं।

श्रीशुकदेवकृत भगवान् मधुसूदनकी स्तुति

× × × × नमस्ते वासुदेवाय सर्वलोकैकसाक्षिणे ॥
जगद्बीजस्वरूपाय पूर्णाय निभृतात्मने । हरये वासुकिस्थाय श्वेतद्वीपनिवासिने ॥
हंसाय मत्स्यरूपाय वाराहतनुधारिणे । नृसिंहाय ध्रुवेज्याय सांख्ययोगेश्वराय च ॥
चतुस्सनाय कूर्माय पृथवे स्वसुखात्मने । नाभेयाय जगद्धात्रे विधात्रेऽन्तकराय च ॥
भार्गवेन्द्राय रामाय राघवाय पराय च । कृष्णाय वेदकर्त्रे च बुद्धकल्किस्वरूपिणे ॥
चतुर्व्यूहाय वेद्याय ध्येयाय परमात्मने । नरनारायणाख्याय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥
ऋतधाम्ने विधाम्ने च सुपर्णाय स्वरोचिषे । ऋभवे सुव्रताख्याय सुधाम्ने चाजिताय च ॥
विश्वरूपाय विश्वाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे । यज्ञाय यज्ञभोक्त्रे च स्थविष्ठायाणवेऽर्थिने ॥
आदित्यसोमनेत्राय सहओजोबलाय च । इज्याय साक्षिणेऽजाय बहुशीर्षाङ्घ्रिबाहवे ॥
श्रीशाय श्रीनिवासाय भक्तवश्याय शार्ङ्गिणे । अष्टप्रकृत्यधीशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥
बृहदारण्यवेद्याय हृषीकेशाय वेधसे । पुण्डरीकनिभाक्षाय क्षेत्रज्ञाय विभासिने ॥
गोविन्दाय जगत्कर्त्रे जगन्नाथाय योगिने । सत्याय सत्यसंधाय वैकुण्ठायाच्युताय च ॥
अधोक्षजाय धर्माय वामनाय त्रिधातवे । धृतार्चिषे विष्णवे तेऽनन्ताय कपिलाय च ॥
विरिञ्चये त्रिककुदे ऋग्यजुःसामरूपिणे । एकशृङ्गाय च शुचिश्रवसे शास्त्रयोनये ॥
वृषाकपय ऋद्धाय प्रभवे विश्वकर्मणे । भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय दैत्यघ्ने निर्गुणाय च ॥
निरञ्जनाय नित्याय ह्यव्ययायाक्षराय च । नमस्ते पाहि मामीश शरणागतवत्सल ॥

(नारदपुराण, पूर्वभाग ६२ । ५०–६५)

सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र साक्षी आप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है । सम्पूर्ण जगत्के बीजस्वरूप, सर्वत्र परिपूर्ण एवं निश्चल आत्मरूप आपको नमस्कार है । वासुकिनाग (शेष)की शय्यापर शयन करनेवाले श्वेतद्वीपनिवासी श्रीहरिको नमस्कार है। आप हंस, मत्स्य, वराह तथा नरसिंहका रूप धारण करनेवाले हैं। ध्रुवके आराध्यदेव भी आप ही हैं। आप सांख्य और योग—दोनोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है । सनकादि चारों कुमार आपके ही अवतार हैं । आपने ही कच्छप और पृथुका रूप धारण किया है । आत्मानन्द ही आपका स्वरूप है । आप ही नाभिपुत्र ऋषभदेवजीके रूपमें प्रकट हुए हैं । जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले आप ही हैं; आपको नमस्कार है । भृगुनन्दन परशुराम, रघुनन्दन श्रीराम, परात्पर श्रीकृष्ण, वेदव्यास, बुद्ध तथा कल्कि आपके ही स्वरूप हैं; आपको नमस्कार है । वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके रूपमें आप ही विराज रहे हैं । जानने और चिन्तन करनेयोग्य परमात्मा भी आप ही हैं । नर-नारायण, शिपिविष्ट (तेजोमण्डलसे व्याप्त) तथा विष्णु नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है । सत्य ही आपका धाम है । आप धामरहित हैं । गरुड़ आपके ही स्वरूप हैं । आप स्वयं-प्रकाश, ऋभु (देवता), उत्तम व्रतका पालन करनेके लिये विख्यात, उत्कृष्ट धामवाले और अजित हैं; आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण विश्व आपका स्वरूप है । आप ही विश्वरूपमें प्रकट हैं । उसकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भी आप ही हैं। यज्ञ और उसके भोक्ता, स्थूल और सूक्ष्म तथा याचना करनेवाले वामनरूप आपको नमस्कार है । सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं । साहस, ओज और बल आपसे भिन्न नहीं हैं । आप यज्ञोंद्वारा यजन करनेयोग्य, साक्षी, अजन्मा तथा अनेक हाथ-पैर और मस्तकवाले हैं । आपको नमस्कार है । आप लक्ष्मीके स्वामी, उनके निवासस्थान तथा भक्तोंके अधीन रहनेवाले हैं। आप शार्ङ्गनामक धनुष धारण करते हैं । आठ प्रकृतियोंके* अधिपति, ब्रह्मा तथा अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न आप परमेश्वरको नमस्कार है । बृहदारण्यक उपनिषद्के द्वारा आपके तत्त्वका बोध होता है । आप इन्द्रियोंके प्रेरक तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्मा हैं ।

* भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश), मन, बुद्धि और अहंकार—इनको अपनी आठ प्रकृतियाँ बताया है ।

आपके नेत्र विकसित कमलके समान हैं। क्षेत्रज्ञके रूपमें आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। आपको नमस्कार है। गोविन्द, जगत्कर्ता, जगन्नाथ, योगी, सत्यस्वरूप, सत्यप्रतिज्ञ, वैकुण्ठ और अच्युतरूप आपको नमस्कार है। अधोक्षज (इन्द्रियातीत), धर्मरूप, वामन, त्रिधातु (त्रिगुणस्वरूप), तेजःपुञ्ज धारण करनेवाले, विष्णु, अनन्त एवं कपिलरूप आपको नमस्कार है। आप ही विरिञ्चि नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माजी हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आपके तीन शिखरस्वरूप हैं। एक शृङ्ग (दाढ़)-वाले भगवान् वराह भी आप ही हैं। आपका यश परम पवित्र है तथा सम्पूर्ण वेद-शास्त्र आपसे ही प्रकट हुए हैं; आपको नमस्कार है। आप वृषाकपि (धर्मको अविचलरूपसे स्थापित करनेवाले विष्णु, शिव और इन्द्र) हैं। सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न तथा प्रभु—सर्वशक्तिमान् हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी ही रचना है। भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक आपके ही स्वरूप हैं। आप दैत्योंका नाश करनेवाले तथा निर्गुणरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप निरञ्जन (मायालेश-शून्य), नित्य, अव्यय और अक्षररूप हैं; शरणागतवत्सल ईश्वर! आपको नमस्कार है, आप मेरी रक्षा कीजिये।

श्रीनारायण-यन्त्र

(लेखक—पं० श्रीवैदेहीशरणजी शास्त्री)

अष्टाक्षर विष्णु-मन्त्र 'ॐ नमो नारायणाय' के 'नारायण-यन्त्र'का पूजन-विधान सर्वाभीष्ट-सिद्धि-प्रदायक है। इसके अनुष्ठानसे सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति एवं अन्तमें साधकको नारायण-पदकी प्राप्ति होती है। इसका प्रयोग विधिके अनुसार करना चाहिये। इसका अनुष्ठान करनेवाले साधकको पूजन आरम्भ करनेके पूर्व स्नानादिसे निवृत्त होकर पवित्र स्थानमें शुद्ध आसन बिछाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाना चाहिये और भगवत्स्मरण-पूर्वक शरीरकी बाह्याभ्यन्तर शुद्धिके लिये—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'जो मनुष्य कमल-नयन भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण करता है, वह चाहे अपवित्र हो या पवित्र, सभी अवस्थाओंमें वह बाहर और भीतरसे शुद्ध हो जाता है।'

—यह मन्त्र पढ़कर शरीरपर जल छिड़कना चाहिये और 'श्रीकेशवाय नमः, श्रीनारायणाय नमः, श्रीमाधवाय नमः, श्रीहृषीकेशाय नमः' बोलकर आचमन करना चाहिये।

(१) संकल्प—तदनन्तर दाहिने हाथमें जल, पुष्प और अक्षत लेकर निम्नलिखित प्रकारसे संकल्प पढ़ना चाहिये—

ॐ तत्सदद्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वते मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे (अमुक) संवत्सरे (अमुक) मासे (अमुक) पक्षे (अमुक) तिथौ (अमुक) वासरे (अमुक) नामाहं मम सकलाभीष्टसिद्ध्यै श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीत्यर्थं चाष्टाक्षरविष्णुयन्त्रपूजनमादौ विघ्नविघातार्थं गणेशाम्बिकापूजनं च करिष्ये।

(२) गौरी-गणेश-पूजन—इसके अनन्तर गणेशजी-की पूजाके लिये गणेशजीकी मूर्ति, चित्र अथवा किसी शुद्ध पात्रमें चावलोंपर सुपारीको लाल या पीले धागोंसे लपेटकर रखे और मनसे गणेशजीके पदार्पणकी भावना करते हुए आवाहनके लिये अक्षत और पुष्प छोड़े—

गजाननं भूतगणादिसेवितं
कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं
नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

'मैं गजवदन भगवान् गणेशजीको प्रणाम करता हूँ, जिनकी भूतगण आदि सेवा करते रहते हैं, जो कपित्थ (कैथ), जामुन आदिके सुन्दर फलोंका भोग लगाते हैं, जो माँ पार्वतीके पुत्र हैं और शोकविनाशक हैं तथा जिनके चरण-कमल विघ्नोंको दूर करनेवाले हैं।'

आवाहनके अनन्तर 'ॐ गं गणपतये नमः'—यह मन्त्र प्रत्येक बार बोलते हुए पञ्चोपचार (गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य) से पूजन करके इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक।
भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात्॥

'हे गणोंके अधिपति ! (आप हमारी) रक्षा करें । हे त्रैलोक्यके रक्षक ! (आप हमारी) रक्षा करें । हे भक्तोंको अभय करनेवाले ! आप इस संसार-रूपी समुद्रसे हमारा उद्धार करें ।'

गणेशजीकी पूजा करनेके पश्चात् गौरीका पूजन गणेशजीकी भाँति करना चाहिये एवं अक्षत-पुष्प लेकर '**ॐ अम्बे अम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ।**' (शु० यजु० २३ । १८) —इस मन्त्रसे आवाहन करे । जगदम्बा गौरीको आवाहित करके '**ॐ गौं गौर्यै नमः**' प्रत्येक बार बोलकर पञ्चोपचारसे पूजन करके हाथमें गन्ध-पुष्प लेकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

> सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
> शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

'सभी प्रकारके कार्योंको सिद्ध करनेवाली शिवपत्नी, सर्व-मङ्गलस्वरूपा एवं मङ्गल-दायिनी तीन नेत्रोंवाली भगवती पार्वतीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ । हे नारायणि (नारायणभगिनी) ! आपको नमस्कार है ।'

(३) कलश-संस्थापन—शुद्ध भूमिपर रोलीसे अष्ट-दल कमल बनाकर उसपर सप्तधान्य अथवा गेहूँ-चावल आदि रखकर कलश-स्थापन करना चाहिये । इसके अनन्तर कलशमें वरुण-देवके पदार्पणका भाव रखते हुए जल, चन्दन, सुपारी, सर्वौषधि छोड़कर उसके ऊपर दूब, पञ्चपल्लव, पूर्णपात्र (चावलसे भरा एक पात्र) और श्रीफल रख देने चाहिये और निम्नलिखित प्रार्थना करते हुए आवाहन करना चाहिये—

> कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
> मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥
> कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुंधरा ।
> ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥
> अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ।
> अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥
> गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
> नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु ॥
> सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
> आयान्तु देवपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः ॥

'कलशके मुखपर श्रीविष्णुभगवान्, कण्ठपर श्रीरुद्र स्थित हैं, उसके अधोभागपर (जहाँ भूमि और कलशका संयोग है) ब्रह्माजी स्थित हैं । मध्यभागमें मातृगण अर्थात् मातृकाएँ हैं । एक पार्श्वभागमें समुद्र और दूसरेमें सातों द्वीपोंसे युक्त पृथिवी है । अङ्गोंके सहित (निरुक्त, ज्योतिषादि छः अङ्गोंके सहित) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद सभी कलशमें स्थित हैं । यहाँ शान्ति और पुष्टि प्रदान करनेवाली गायत्री और सावित्री हैं । गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी नदियो ! आप (कलशके) जलमें आश्रय लें । पापोंका विनाश करनेवाली सभी नदियाँ, समुद्र, पर्वत, तीर्थ तथा अन्य जल प्रदान करनेवाले नदादि देव-पूजनके निमित्त पदार्पण करें ।'

इस प्रकार गणेश, गौरी और कलशके पूजनके उपरान्त साधकको विनियोग, ऋष्यादिन्यास, अङ्गन्यास, करन्यास आदि करने चाहिये ।

(४) विनियोग—

दाहिने हाथमें जल लेकर विनियोगके लिये इस प्रकार कहे—

'**अस्य श्रीनारायणयन्त्रस्य साध्यनारायणऋषिः, देवी गायत्रीच्छन्दः, विष्णुर्देवता, सर्वेष्टसिद्धये जपे विनियोगः**' इसको पढ़कर भूमिपर जल छोड़ दे ।

(५) न्यास—

(क) ऋष्यादिन्यास—

१—साध्यनारायणर्षये नमः शिरसि । (इसे पढ़कर दाहिने हाथकी पहली-तर्जनी मध्यमा अँगुलियोंसे सिरका स्पर्श करे ।)

२—देवीगायत्रीच्छन्दसे नमः मुखे । (इसे पढ़कर दाहिने हाथकी तर्जनी और अँगूठेसे मुखका स्पर्श करे तथा स्पर्श करनेके पश्चात् हाथ धो ले ।)

३—विष्णुदेवतायै नमः हृदि । (इसे पढ़कर दाहिने हाथकी तर्जनी-मध्यमा-अनामिका अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे ।)

४—विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे । (इसे पढ़कर सिरसे पैरतक शरीरके सब अङ्गोंका एक बारमें स्पर्श कर ले और हाथ धो ले ।)

(ख) करन्यासः—

१—ॐ क्रुधोल्काय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। (दोनों हाथोंकी तर्जनी अँगुलियोंसे अँगूठोंका स्पर्श करे।)

२—ॐ महोल्काय तर्जनीभ्यां नमः। (दोनों अँगूठोंसे दोनों तर्जनी अँगुलियोंका स्पर्श करे।)

३—ॐ वीरोल्काय मध्यमाभ्यां नमः। (दोनों अँगूठोंसे मध्यमा अँगुलियोंका स्पर्श करे।)

४—ॐ द्व्युल्काय अनामिकाभ्यां नमः। (दोनों अँगूठोंसे अनामिका अँगुलियोंका स्पर्श करे।)

५—ॐ सहस्रोल्काय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। (दोनों अँगूठोंसे दोनों कनिष्ठिका अँगुलियोंका स्पर्श करे।)

(ग) हृदयादिषडङ्गन्यास—

१—ॐ क्रुधोल्काय हृदयाय नमः। (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श।)

२—ॐ महोल्काय शिरसे स्वाहा। (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे सिरके मध्यभागका स्पर्श।)

३—ॐ वीरोल्काय शिखायै वषट्। (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे शिखाका स्पर्श।)

४—ॐ द्व्युल्काय कवचाय हुम्। (दोनों हाथोंसे दोनों कंधोंका स्पर्श करे अर्थात् बायें हाथसे दाहिने कंधेका और दाहिने हाथसे बाये कंधेका स्पर्श करे।)

५—ॐ सहस्रोल्कायास्त्राय फट्। (इसे पढ़कर दाहिने हाथको सिरकी दाहिनी ओरसे पीछे ले जाकर, फिर सिरकी बायीं ओरसे सामनेकी ओर लाये और तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजा दे।)

(घ) मन्त्राक्षर-न्यास—

इसके अनन्तर मूलमन्त्रके अक्षरोंसे षडङ्गन्यास नीचे लिखे प्रकारसे करे। उपर्युक्त हृदयादिन्यासमें दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे जिस अङ्गका जिस प्रकारसे स्पर्श किया गया है, उसी प्रकार मन्त्राक्षर-न्यासमें करना चाहिये।

१—ॐ ॐ हृदयाय नमः। (हृदयका स्पर्श)

२—ॐ नं नमः शिरसे स्वाहा। (सिरका स्पर्श)

३—ॐ मों नमः शिखायै वषट्। (शिखाका स्पर्श)

४—ॐ नां नमः कवचाय हुम्। (कंधोंका स्पर्श)

५—ॐ रां नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। (दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटके मध्यका स्पर्श करे।)

६—ॐ यं नमः अस्त्राय फट्। (सिरपरसे हाथ घुमाकर ताली बजाये।)

७—ॐ णां नमः कुक्षयोः। (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे बायीं कोखका तथा बायें हाथकी अँगुलियोंसे दाहिनी कोखका स्पर्श करे।)

८—ॐ यं नमः पृष्ठे। (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे पीठका स्पर्श करे।)

(ङ) मन्त्रवर्णाद्यङ्गन्यास—

हस्त-प्रक्षालन करनेके अनन्तर मन्त्रके वर्णोंसे अङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

प्रथम न्यास

१—ॐ ॐ नमः आधारे। (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे नितम्बभागोंका स्पर्श)

२—ॐ नं नमः हृदि। (हृदयका स्पर्श)

३—ॐ मों नमः वक्त्रे। (मुखका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

४—ॐ नां नमः दक्षिणभुजे। (बायें हाथकी अँगुलियोंसे दक्षिण बाहुका स्पर्श)

५—ॐ रां नमः वामभुजे। (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे वाम बाहुका स्पर्श)

६—ॐ यं नमः दक्षिणपादे। (दाहिने पैरका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

७—ॐ णां नमः वामपादे। (बायें पैरका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

८—ॐ यं नमः नाभौ। (नाभिका स्पर्श)। यह प्रथम न्यास सम्पन्न हुआ।

द्वितीय न्यास

१—ॐ ॐ नमः कण्ठे। (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे कण्ठका स्पर्श)

२—ॐ नं नमः नाभौ। (नाभिका स्पर्श)

३—ॐ मों नमः हृदि। (हृदयका स्पर्श)

४—ॐ नां नमः दक्षिणस्तने । (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे दक्षिण स्तनभागका स्पर्श)

५—ॐ रां नमः वामस्तने । (दक्षिण हाथकी अँगुलियोंसे वाम स्तनभागका स्पर्श)

६—ॐ यं नमः दक्षिणपार्श्वे । (शरीरके दक्षिण पार्श्वभागका स्पर्श)

७—ॐ णां नमः वामपार्श्वे । (वाम पार्श्वभागका स्पर्श)

८—ॐ यं नमः पृष्ठे । (पीठका स्पर्श) ।

यह द्वितीय न्यास सम्पन्न हुआ ।

तृतीय न्यास

१—ॐ ॐ नमः मूर्ध्नि । (सिरके मध्यभागका स्पर्श)

२—ॐ नं नमः मुखे । (मुखका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

३—ॐ मों नमः दक्षिणनेत्रे । (दक्षिण नेत्रका स्पर्श)

४—ॐ नां नमः वामनेत्रे । (बायें नेत्रका स्पर्श)

५—ॐ रां नमः दक्षिणकर्णे । (दाहिने कानका स्पर्श)

६—ॐ यं नमः वामकर्णे । (बायें कानका स्पर्श)

७—ॐ णां नमः दक्षिणनासापुटे । (दाहिने नथुनेका स्पर्श)

८—ॐ यं नमः वामनासापुटे । (बायें नथुनेका स्पर्श) ।

यह तृतीय न्यास सम्पन्न हुआ ।

चतुर्थ न्यास

१—ॐ ॐ नमः दक्षबाहुमूले । (दाहिने बाहुमूलका स्पर्श)

२—ॐ नं नमः दक्षकूर्परे । (दाहिने हाथकी कोहनीका स्पर्श)

३—ॐ मों नमः दक्षमणिबन्धे । (दाहिने मणिबन्ध अर्थात् कलाईका स्पर्श)

४—ॐ नां नमः दक्षहस्ताङ्गुलिमूले । (दाहिने हाथसे सभी अँगुलियोंके मूलभागका स्पर्श)

५—ॐ रां नमः दक्षहस्ताङ्गुल्यग्रे । (अँगूठेसे दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागका स्पर्श)

६—ॐ यं नमः वामबाहुमूले । (अँगुलियोंसे बायें बाहुके मूलका स्पर्श)

७—ॐ णां नमः वामकूर्परे । (बायें हाथकी कोहनीका स्पर्श)

८—ॐ यं नमः वाममणिबन्धे । (बायीं कलाईका स्पर्श) ।

यह चतुर्थ न्यास सम्पन्न हुआ ।

पञ्चम न्यास

१—ॐ ॐ नमः वामहस्ताङ्गुलिमूले । (बायें हाथकी अँगुलियोंके मूलभागका स्पर्श)

२—ॐ नं नमः वामहस्ताङ्गुल्यग्रे । (बायें हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागका स्पर्श)

३—ॐ मों नमः दक्षिणपादमूले । (दाहिने पैरके मूलभागका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

४—ॐ नां नमः दक्षिणजानुनि । (दाहिने घुटनेका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

५—ॐ रां नमः दक्षिणगुल्फे । (अँगूठेसे दाहिने हाथकी अँगुलियोंका स्पर्श)

६—ॐ यं नमः दक्षिणपादाङ्गुलिमूले । (दाहिने पैरकी अँगुलियोंके मूलभागका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

७—ॐ णां नमः दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे । (दाहिने पैरके अँगुलियोंके अग्रभागका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

८—ॐ यं नमः वामपादमूले । (बायें पैरके मूलभागका स्पर्श, फिर हाथ धोना) ।

यह पञ्चम न्यास सम्पन्न हुआ ।

षष्ठ न्यास

१—ॐ ॐ नमः वामजानुनि । (बायें घुटनेका स्पर्श)

२—ॐ नं नमः वामगुल्फे । (बायें टखनेका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

३—ॐ मों नमः वामपादाङ्गुलिमूले । (बायें पैरकी अँगुलियोंके मूलका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

४—ॐ नां नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे । (बायें पैरकी अँगुलियोंके अग्रभागका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

(इसके अनन्तर हृदयपर हाथ रखकर निम्नलिखित मन्त्रोंको पढ़ता हुआ त्वचा, रक्त, मांस और चर्बीके स्पर्शका भाव करे ।)

५—ॐ रां नमः त्वचि । (त्वचाके स्पर्शका भाव करे ।)

६—ॐ यं नमः रक्ते । (रक्तके स्पर्शका भाव करे ।)

७—ॐ णां नमः मांसे । (मांसके स्पर्शका भाव करे ।)

८—ॐ यं नमः मेदसि । (चर्बीके स्पर्शका भाव करे ।)

यह षष्ठ न्यास सम्पन्न हुआ ।

सप्तम न्यास

१—ॐ ॐ नमः अस्थिन । (अस्थि स्पर्शका भाव रखते हुए शरीरका स्पर्श कर ले ।)

२—ॐ नं नमः मज्जायाम्। (हड्डीकी नलीके भीतरके गूदेके स्पर्शका भाव रखते हुए शरीरका स्पर्श कर ले।)

३—ॐ मों नमः शुक्रे। (वीर्य-स्पर्शका भाव रखते हुए नाभिके नीचे भागका स्पर्श कर फिर हाथ धोना)

४—ॐ नां नमः प्राणे। प्राण-स्पर्शका भाव करता हुआ हृदय-भागका स्पर्श कर ले।)

५—ॐ रां नमः हृदि। (हृदयभागका स्पर्श)

६—ॐ यं नमः दक्षिणगले। (गलेके दक्षिण भागका स्पर्श)

७—ॐ णां नमः वामगले। (गलेके वामभागका स्पर्श)

८—ॐ यं नमः हृदि। (हृदय-प्रदेशका स्पर्श)।

यह सप्तम न्यास सम्पन्न हुआ।

अष्टम न्यास

१—ॐ ॐ नमः मूर्ध्नि। (सिरके बीचके भागका स्पर्श)

२—ॐ नं नमः नेत्रयोः। (दोनों नेत्रोंका स्पर्श)

३—ॐ मों नमः मुखे। (मुखका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

४—ॐ नां नमः हृदि। (हृदय-प्रदेशका स्पर्श)

५—ॐ रां नमः कुक्षौ। (दोनों कोखोंका स्पर्श)

६—ॐ यं नमः ऊर्वोः। (जाँघोंका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

७—ॐ णां नमः जङ्घयोः। (दोनों पिंडलियोंका स्पर्श, फिर हाथ धोना)

८—ॐ यं नमः पादयोः। (दोनों पैरोंका स्पर्श, फिर हाथ धोना)।

यह अष्टमन्यास सम्पन्न हुआ।

(च) मूर्ति-पञ्जर-न्यास

इस प्रकार मन्त्र-वर्णात्मक अष्टाङ्गन्यास करके मूर्ति-पञ्जर-न्यास करना चाहिये। उसका क्रम दो सोपानोंमें इस प्रकार है—

प्रथम सोपान

१—ॐ चक्राय नमः दक्षिणगण्डे। (दाहिने गालका स्पर्श)

२—ॐ शङ्खाय नमः वामगण्डे। (बायें गालका स्पर्श)

३—ॐ गदायै नमः दक्षिणांसे। (दाहिने कंधेका स्पर्श)

४—ॐ पद्माय नमः वामांसे। (बायें कंधेका स्पर्श)

इस प्रकार न्यास करके मूर्ति-पञ्जर-न्यास करना चाहिये। उसका क्रम इस प्रकार है—

द्वितीय सोपान

१—ॐ ॐ अं केशवाय धात्रे नमः ललाटे। (ललाटका स्पर्श)

२—ॐ नं आं नारायणायार्यम्णे नमः कुक्षौ। (दोनों कोखोंका स्पर्श)

३—ॐ मों इं माधवाय मित्राय नमः हृदि। (हृदय-भागका स्पर्श)

४—ॐ भं ईं गोविन्दाय वरुणाय नमः कण्ठे। (कण्ठका स्पर्श)

५—ॐ गं उं विष्णवेंऽशवे नमः दक्षिणपार्श्वे। (दक्षिण पार्श्वभागका स्पर्श)

६—ॐ वं ऊं मधुसूदनाय भगाय नमः दक्षिणांसे (दक्षिण कंधेका स्पर्श)

७—ॐ तें एं त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः गलदक्षिण-भागे। (गलेके दक्षिण भागका स्पर्श)

८—ॐ वां ऐं वामनायेन्द्राय नमः वामपार्श्वे। (वाम पार्श्वभागका स्पर्श)

९—ॐ सुं ओं श्रीधराय पूष्णे नमः वामांसे। (शरीरके वाम कंधेका स्पर्श)

१०—ॐ दें औं हृषीकेशाय पर्जन्याय नमः गलवाम-भागे। (गलेके वामभागका स्पर्श)

११—ॐ वां अं पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः पृष्ठे। (पीठका स्पर्श)

१२—ॐ यं अः दामोदराय विष्णवे नमः ककुदि। (गर्दनके नीचेका स्पर्श)

१३—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मूर्ध्नि। (इसे पढ़कर सिरके बीचके भागका स्पर्श करे)।

इस प्रकार मूर्ति-पञ्जर-न्यास करना चाहिये। इसके माहात्म्यमें कहा गया है कि इन द्वादशार्णमन्त्रवर्णोंका ब्रह्मरन्ध्रमें न्यास करनेवाला साक्षात् वासुदेवस्वरूप एव अमित तेजसे युक्त हो जाता है।

(छ) किरीट-मन्त्र-न्यास

द्वादश-मूर्ति-पञ्जर-न्यास करनेके अनन्तर इस मन्त्रका पाठ करते हुए सम्पूर्ण अङ्गमें सिरसे लेकर पैरतक स्पर्श करते हुए व्यापक-न्यास करना चाहिये—

ॐ किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलधरशङ्खचक्रगदाम्भोज-पीताम्बरधरश्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलश्रीभूमिसहितात्मज्योति-र्द्वयदीप्तकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः।

'किरीट (मुकुट), केयूर (बाजूबंद), हार, मकरकी आकृतिवाले कुण्डलसे विभूषित, शङ्ख चक्र-गदा-पद्म एवं पीताम्बर धारण किये हुए, श्रीवत्सचिह्नसे युक्त वक्षःस्थल तथा श्री और

भूमिके सहित, आत्मज्योतिसे दीप्त दोनों हाथोंवाले तथा हजारों सूर्यके समान तेजसे देदीप्यमान (श्रीविष्णुभगवान्)-को नमस्कार है।'

इसे किरीट-मन्त्र-न्यास कहते हैं। इस न्यासको विधिवत् करके ध्यान करना चाहिये और निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

६—ध्यान

उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिशं शङ्खं गदां पङ्कजं
चक्रं बिभ्रतमिन्दिरावसुमतीसंशोभिपार्श्वद्वयम्।
कोटीराङ्गदहारकुण्डलधरं पीताम्बरं कौस्तुभो-
द्दीप्तं विश्वधरं स्ववक्षसि लसच्छ्रीवत्सचिह्नं भजे॥

'उदयकालीन करोड़ों सूर्यकी भाँति निरन्तर प्रकाशमान एवं शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए, अपने दोनों ओर श्रीदेवी एवं भूदेवीसे सुशोभित तथा किरीट, अङ्गद (बाजूबंद), हार, कुण्डल, कौस्तुभमणि एवं पीताम्बरसे अलंकृत, सम्पूर्ण विश्वको (अपने विराट् स्वरूपमें) धारण करनेवाले तथा हृदयपर श्रीवत्स-चिह्नसे सुशोभित भगवान् श्रीविष्णुका मैं ध्यान करता हूँ।'

पीठ-पूजा

न्यास एवं ध्यान करनेके पश्चात् आवरणका पूजन किया जाता है। आवरण-पूजनके समय यन्त्रके विभिन्न प्रकोष्ठोंमें प्रदर्शित मन्त्रोंका क्रमशः विधिवत् उल्लेख होना चाहिये। यन्त्रका निमाण धातु (स्वर्ण, रजत अथवा ताम्र)-पत्र या भोजपत्र या काष्ठफलकपर शक्तिके अनुसार किया जा सकता है।

(७) अग्न्युत्तारण—

यन्त्र यदि किसी धातु-पत्रपर निर्मित हो तो आगमें तपाकर और यदि काष्ठादिपर निर्मित हो तो मात्र अग्निको दूरसे दिखाकर तथा तपाने या दिखानेके बाद गङ्गाजलसे संसिक्तकर अग्न्युत्तारण करना चाहिये। इससे धातु आदिके सारे दोषोंका परिमार्जन हो जाता है। इसके अनन्तर 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः'—इस मन्त्रको पढ़कर पुष्पका अथवा अक्षतका आसन प्रदान करते हुए पीठके मध्यभागमें यन्त्रको स्थापित करना चाहिये। फिर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्राण-प्रतिष्ठाकी विधि यह है कि साधक 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रका उच्चारण करके दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे यन्त्रका स्पर्श कर ले।

(८) केन्द्रस्थ-देवाराधन—यन्त्रमें प्राण-प्रतिष्ठा करनेके उपरान्त केन्द्रमें, जहाँ 'ॐ नमो नारायणाय' लिखा है, भगवान् नारायणके श्रीविग्रहकी भावना करके गन्ध और पुष्पसे भगवान् नारायणका और केन्द्र-लिखित मन्त्रका पूजन करना चाहिये। पूजन करते समय प्रत्येक बार 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर गन्ध-पुष्प अर्पित करे।

केन्द्रस्थ भगवान् नारायणके पूजनोपरान्त आवरण-पूजनके निमित्त अनुज्ञा लेनेके लिये दोनों हाथोंमें पुष्प लेकर निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करे और पुष्पाञ्जलि समर्पित करे—

ॐ संविन्मयः परो देवः परामृतरसप्रियः।
अनुज्ञां देहि मे विष्णो परिवारार्चनाय ते॥

'हे भगवान् विष्णु! उत्तम अमृतरसके प्रेमी संविन्मय पर-देवता आप मुझे अपने परिकरोंके अर्चनकी अनुज्ञा प्रदान करें।'

(९) आवरण-पूजन—

इसके अनन्तर विभिन्न आवरणोंका क्रमशः पूजन करे। आवरण-पूजनमें मन्त्र बोलकर गन्ध एवं पुष्पसे प्रत्येक श्रीविष्णु-परिवाराङ्गका अर्चन करे।

प्रथमावरण (षट्कोण)-स्थित-देवाराधन

१—ॐ क्रुधोल्काय हृदयाय नमः। २—ॐ महोल्काय शिरसे स्वाहा। ३—ॐ वीरोल्काय शिखायै वषट्। ४—ॐ द्युल्काय कवचाय हुम्। ५—ॐ सहस्रोल्काय अस्त्राय फट्।

—इस प्रकार प्रथमावरणस्थित पाँचों विष्णु-परिवाराङ्गोंका पूजन करके अञ्जलिमें पुष्प लेकर 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रको पढ़नेके उपरान्त—

ॐ अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥

'हे शरणागतवत्सल! मुझे अभीष्ट (मनोवाञ्छित फलकी सिद्धि) प्रदान कीजिये। भक्तिभावसे युक्त आपको यह प्रथमावरणका अर्चन समर्पित करता हूँ।'—कहकर पुष्पाञ्जलि समर्पित कर दे और 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु' यों कहकर नमस्कार करे। यह प्रथमावरणका अर्चन सम्पन्न हुआ।

द्वितीयावरण (अष्टदल कमलके मूल-भाग)-स्थित-देवाराधन

प्रथमावरणकी पूजा करके कमलके आठों दलोंके मूलमें देवता और उपासकके बीच पूर्व दिशाकी कल्पना करके अर्थात् उपासकका मुख पूर्वकी ओर तथा देवताका श्रीमुख पश्चिमकी ओर मानकर निम्नलिखित मन्त्रोंको पढ़ता हुआ आठों दिशाओंके दलस्थित मन्त्राक्षरोंका पूर्वादिक्रमसे पूजन करे। प्रथमावरण-पूजनकी भाँति प्रत्येक मन्त्राक्षरके पूजनमें गन्ध एवं पुष्प समर्पित किये जायँ।

१—ॐ ॐ नमः। २—ॐ नं नमः। ३—ॐ मों नमः। ४—ॐ नां नमः। ५—ॐ रां नमः। ६—ॐ यं नमः। ७—ॐ णां नमः। ८—ॐ यं नमः।

द्वितीय आवरणके सभी मन्त्राक्षरोंका पूजन करनेके अनन्तर अञ्जलिमें पुष्प लेकर और 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र कहकर द्वितीय आवरणके समस्त मन्त्राक्षरोंके प्रति पुष्पाञ्जलि समर्पित करे एवं प्रणाम करे।

तृतीयावरण (अष्टदल कमलके मध्यभाग)-स्थित-देवाराधन

इसके अनन्तर कमलके अष्टदलोंके मध्यभागमें स्थित प्रत्येक श्रीविष्णु-परिवाराङ्गका क्रमशः पूर्वादि चारों दिशाओं तथा अग्निकोण आदि चारों कोणोंमें गन्ध-पुष्पसे पूजन करना चाहिये।

१—प्राच्यां ॐ वासुदेवाय नमः। वासुदेवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२—अवाच्यां ॐ संकर्षणाय नमः। संकर्षणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३—प्रतीच्यां ॐ प्रद्युम्नाय नमः। प्रद्युम्नश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

४—उदीच्यां ॐ अनिरुद्धाय नमः। अनिरुद्धश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

५—आग्नेय्यां ॐ शान्त्यै नमः। शान्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

६—नैर्ऋत्यां ॐ श्रियै नमः। श्रीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

७—वायव्यां ॐ सरस्वत्यै नमः। सरस्वतीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

८—ऐशान्यां ॐ रत्यै नमः। रतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

—इस प्रकार तृतीय-आवरणस्थित श्रीविष्णु-परिवाराङ्गोंकी पूजा करके अन्तमें मूलमन्त्रसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये। फिर प्रणाम करे।

चतुर्थावरण (कमलके अष्टदलोंके अग्र-भाग)-स्थित-देवाराधन

इसके अनन्तर कमलके अष्टदलोंके अग्रभागमें स्थित श्रीविष्णु-परिवाराङ्गोंका पूजन गन्ध-पुष्पसे करना चाहिये—

१—प्राच्यां ॐ चक्राय नमः। २—अवाच्यां ॐ शङ्खाय नमः। ३—प्रतीच्यां ॐ गदायै नमः। ४—उदीच्यां ॐ पद्माय नमः। ५—आग्नेय्यां ॐ कौस्तुभाय नमः। ६—नैर्ऋत्यां ॐ मुसलाय नमः। ७—वायव्यां ॐ खड्गाय नमः। ८—ऐशान्यां ॐ वनमालायै नमः।

इन आठों श्रीविष्णु-परिवाराङ्गोंकी पूजा करनेके अनन्तर मूल मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करे। फिर प्रणाम करे।

पञ्चमावरण (भूपुरके अभ्यन्तर भाग)-स्थित-देवाराधन

इसके अनन्तर भूपुरके अभ्यन्तर भागमें स्थित श्रीविष्णु-परिवाराङ्गोंका पूजन गन्ध-पुष्पसे करना चाहिये—

१—प्राच्यां ॐ गरुडाय नमः। २—अवाच्यां ॐ शङ्खनिधये नमः। ३—प्रतीच्यां ॐ ध्वजाय नमः। ४—उदीच्यां ॐ पद्मनिधये नमः। ५—आग्नेय्यां ॐ विघ्नाय नमः। ६—नैर्ऋत्यां ॐ आर्यायै नमः। ७—वायव्यां ॐ दुर्गायै नमः। ८—ऐशान्यां ॐ सेनान्यै नमः।

पूर्वकी भाँति इन अष्ट श्रीविष्णु-परिवाराङ्गोंके पूजनके अनन्तर मूल-मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करके प्रणाम करे।

षष्ठावरण (भूपुरके बाहर प्रथम पंक्ति)-स्थित-देवाराधन

इसके अनन्तर भूपुरके उपरिभागस्थित श्रीविष्णु-परिवाराङ्गोंका पूजन गन्ध-पुष्पोंसे करना चाहिये—

१—ॐ लं इन्द्राय नमः। इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२—ॐ रं अग्नये नमः। अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३—ॐ मं यमाय नमः। यमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

४—ॐ क्षं निर्ऋतये नमः। निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

५—ॐ वं वरुणाय नमः। वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

६—ॐ यं वायवे नमः। वायुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

७—ॐ कुं कुबेराय नमः। कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

८—ॐ हं ईशानाय नमः। ईशानश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

९—ॐ आं ब्रह्मणे नमः। ब्रह्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१०- ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः। अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

अतः इन दसों स्थानोंपर दसों दिक्पालोंकी पूजाके अनन्तर मूल मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये, फिर प्रणाम करना चाहिये।

सप्तमावरण (भूपुरके बाहर अन्तिम पंक्ति)-स्थित-देवाराधन

इसके पश्चात् उसी क्रममें यन्त्रके बाहर सप्तमावरणस्थित श्रीविष्णुपरिवाराङ्गोंके पूजनका विधान है। गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करते जाना चाहिये।

१—ॐ वं वज्राय नमः। २—ॐ शं शक्तये नमः। ३—ॐ दं दण्डाय नमः। ४—ॐ खं खड्गाय नमः। ५—ॐ पा पाशाय नमः। ६—ॐ अं अङ्कुशाय नमः। ७—ॐ गं गदायै

नमः। ८–ॐ त्रिं त्रिशूलाय नमः। ९–ॐ पं पद्माय नमः। १०–ॐ चं चक्राय नमः।

इस आवरण-पूजनमें भगवान् श्रीविष्णुके अस्त्रोंके पूजनका विधान है। अतः दसों अस्त्रोंकी पूजाके अनन्तर मूल मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये। यहीं आवरण-पूजनकी क्रिया भी सम्पन्न होती है। अतः आवरण-पूजनके सम्पन्न होनेपर सम्पूर्ण नारायण-यन्त्रका गन्ध-पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजन करके फिर आरती करनी चाहिये। आरती करके 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका जप करना चाहिये।

(२०) पुरश्चरण-विधान

यदि साधक मन्त्र-जपसे पुरश्चरण करना चाहे तो सोलह लाख जप एवं दशांश हवन अथवा उतनी संख्यामें उक्त मन्त्रका जप ही कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें यह कहा गया है कि एकाग्र-चित्तसे षोडश लक्ष जप करके दशांश मधुसे लिप्त कमलोंसे जो मनुष्य हवन करता है, वह धर्म-अर्थ-कामादि सुखोंको प्राप्त करके भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होता है—

विकारलक्षं प्रजपेन्मनुमेनं समाहितः।
तद्दशांशैः सरसिजैर्जुहुयान्मधुनाप्लुतैः॥
धर्मार्थकामाँल्लब्ध्वा वै विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात्॥

न्यासदशकम्

अहं मद्रक्षणभरो मद्रक्षणफलं तथा। न मम श्रीपतेरेवेत्यात्मानं निक्षिपेद् बुधः॥
न्यस्याम्यकिंचनः श्रीमन्ननुकूलोऽन्यवर्जितः। विश्वासप्रार्थनापूर्वमात्मरक्षाभरं त्वयि॥
स्वामी स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम्। स्वदत्तस्वधिया स्वार्थं स्वस्मिन्न्यस्यति मां स्वयम्॥
श्रीमन्नभीष्टवरद त्वामस्मि शरणं गतः। एतद्देहावसाने मां त्वत्पादं प्रापय स्वयम्॥
त्वच्छेषत्वे स्थिरधियं त्वत्प्राप्त्येकप्रयोजनम्। निषिद्धकाम्यरहितं कुरु मां नित्यकिंकरम्॥
देवीभूषणहेत्यादिजुष्टस्य भगवंस्तव। नित्यं निरपराधेषु कैङ्कर्येषु नियुङ्क्ष्व माम्॥
मां मदीयं च निखिलं चेतनाचेतनात्मकम्। स्वकैङ्कर्योपकरणं वरद स्वीकुरु स्वयम्॥
त्वमेव रक्षकोऽसि मे त्वमेव करुणाकरः। न प्रवर्तय पापानि प्रवृत्तानि निवारय॥
अकृत्यानां च करणं कृत्यानां वर्जनं च मे। क्षमस्व निखिलं देव प्रणतार्तिहर प्रभो॥
श्रीमन्नियतपञ्चाङ्गं मद्रक्षणभरार्पणम्। अचीकरत् स्वयं स्वस्मिन्नतोऽहमिह निर्भरः॥

(श्रीवेङ्कटनाथकृतम्)

'मैं, मेरी रक्षाका भार और उसका फल मेरा नहीं, श्रीविष्णुभगवान्‌का ही है'—यों विचारकर विद्वान् पुरुष अपनेको भगवान्‌पर छोड़ दे। हे भगवन्! मैं अकिंचन अपनी रक्षाका भार अनन्य और अनुकूल (प्रणत) होकर विश्वास और प्रार्थनापूर्वक आपको सौंपता हूँ। मेरे स्वामी अपने शेष (दास); अधीनवर्ती और आपपर ही अपना बोझा डालकर निश्चिन्त हुए मुझको अपनी निजकी दी हुई बुद्धिसे स्वयं अपने लिये अपने चरणोंमें डाल लेते हैं (अर्थात् परम पुरुषार्थकी सिद्ध करनेके लिये स्वयं ही अपनी शरणमें ले लेते हैं)। हे अभीष्ट-वरदायक स्वामिन्! मैं आपके शरण हूँ। इस देहका अन्त होनेपर आप मुझे स्वयं अपने चरण-कमलोंतक पहुँचा दें। आपका दास होनेका अटल निश्चय किये हुए, आपकी प्राप्तिका ही एकमात्र प्रयोजन रखनेवाले, निषिद्ध और काम्य कर्मोंसे रहित मुझको आप अपना नित्य सेवक बनाइये। देवी (लक्ष्मीजी), भूषण (कौस्तुभादि) और अस्त्रादि (गदा, शार्ङ्गादि) से युक्त आपकी निर्दोष सेवाओंमें, हे भगवन्! आप मुझे नित्य नियुक्त रखिये। हे वरदायक प्रभो! मुझको और चेतन-अचेतनरूप मेरे सारे प्राणि-पदार्थोंको अपनी सेवाकी सामग्रीके रूपमें स्वयं स्वीकार कीजिये। हे प्रभो! मेरे एकमात्र आप ही रक्षक हैं, आप ही दयाकी खान हैं, अतः पापोंको मेरी ओर प्रवृत्त न कीजिये और प्रवृत्त हुए पापोंका निवारण कीजिये। हे देव! हे प्रणत-दुःखहारी भगवन्! मेरा न करने योग्य कार्योंका करना और करने योग्योंका न करना आप क्षमा करें। श्रीमन्! आपने स्वयं ही मेरी पाँचों इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके मेरी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया, अतः अब मैं चिन्ताके भारसे मुक्त हो गया।

सम्पूर्ण भयोंसे रक्षा करनेवाला श्रीनारायणकवच

सर्वप्रथम श्रीगणेशजी तथा भगवान् नारायणको नमस्कार करके नीचे लिखे प्रकारसे न्यास करे—

अङ्गन्यास

ॐ ॐ नमः पादयोः (दाहिने हाथकी तर्जनी-अङ्गुष्ठ— इन दोनोंको मिलाकर उनसे दोनों पैरोंका स्पर्श करे)।

ॐ नं नमः जानुनोः (दाहिने हाथकी तर्जनी-अङ्गुष्ठ— इन दोनोंको मिलाकर उनसे दोनों घुटनोंका स्पर्श करे)।

ॐ मों नमः ऊर्वोः (दाहिने हाथकी तर्जनी-अङ्गुष्ठ— इन दोनोंको मिलाकर उनसे दोनों जाँघोंका स्पर्श करे)।

ॐ नां नमः उदरे (दाहिने हाथकी तर्जनी-अङ्गुष्ठ— इन दोनोंको मिलाकर उनसे पेटका स्पर्श करे)।

ॐ रां नमः हृदि (मध्यमा-अनामिका-तर्जनीसे हृदयका स्पर्श करे)।

ॐ यं नमः उरसि (मध्यमा-अनामिका-तर्जनीसे छातीका स्पर्श करे)।

ॐ णां नमः मुखे (तर्जनी-अँगूठेके संयोगसे मुखका स्पर्श करे)।

ॐ यं नमः शिरसि (तर्जनी-मध्यमाके संयोगसे सिरका स्पर्श करे)।

करन्यास

ॐ ॐ नमः दक्षिणतर्जन्याम् (दाहिने अँगूठेसे दाहिनी तर्जनीके सिरेका स्पर्श करे)।

ॐ नं नमः दक्षिणमध्यमायाम् (दाहिने अँगूठेसे दाहिने हाथकी मध्यमा अँगुलीका ऊपरवाला पोर स्पर्श करे)।

ॐ मों नमः दक्षिणानामिकायाम् (दाहिने अँगूठेसे दाहिने हाथकी अनामिकाका ऊपरवाला पोर स्पर्श करे)।

ॐ भं नमः दक्षिणकनिष्ठिकायाम् (दाहिने अँगूठेसे दाहिने हाथकी कनिष्ठिकाका ऊपरवाला पोर स्पर्श करे)।

ॐ गं नमः वामकनिष्ठिकायाम् (बायें अँगूठेसे बायें हाथकी कनिष्ठिकाका ऊपरवाला पोर स्पर्श करे)।

ॐ वं नमः वामानामिकायाम् (बायें अँगूठेसे बायें हाथकी अनामिकाका ऊपरवाला पोर स्पर्श करे)।

ॐ तें नमः वाममध्यमायाम् (बायें अँगूठेसे बायें हाथकी मध्यमाका ऊपरवाला पोर स्पर्श करे)।

ॐ वां नमः वामतर्जन्याम् (बायें अँगूठेसे बायें हाथकी तर्जनीका ऊपरवाला पोर स्पर्श करे)।

ॐ सुं नमः दक्षिणाङ्गुष्ठोर्ध्वपर्वणि (दाहिने हाथकी चारों अँगुलियोंसे दाहिने हाथके अँगूठेका ऊपरवाला पोर छूए)।

ॐ दें नमः दक्षिणाङ्गुष्ठाधःपर्वणि (दाहिने हाथकी चारों अँगुलियोंसे दाहिने हाथके अँगूठेका नीचेवाला पोर छूए)।

ॐ वां नमः वामाङ्गुष्ठोर्ध्वपर्वणि (बायें हाथकी चारों अँगुलियोंसे बायें अँगूठेके ऊपरवाला पोर छूए)।

ॐ यं नमः वामाङ्गुष्ठाधःपर्वणि (बायें हाथकी चारों अँगुलियोंसे बायें हाथके अँगूठेका नीचेवाला पोर छूए)।

विष्णुषडक्षरन्यास

ॐ ॐ नमः हृदये (तर्जनी-मध्यमा एवं अनामिकासे हृदयका स्पर्श करे)।

ॐ विं नमः मूर्ध्नि (तर्जनी-मध्यमाके संयोगसे सिरका स्पर्श करे)।

ॐ षं नमः भ्रुवोर्मध्ये (तर्जनी-मध्यमासे दोनों भौंहोंका स्पर्श करे)।

ॐ णं नमः शिखायाम् (अँगूठेसे शिखाका स्पर्श करे)।

ॐ वें नमः नेत्रयोः (तर्जनी-मध्यमासे दोनों नेत्रोंका स्पर्श करे)।

ॐ नं नमः सर्वसंधिषु (तर्जनी-मध्यमा और अनामिकासे शरीरके सभी जोड़ों—जैसे कंधा, केहुनी, घुटना आदिका स्पर्श करे)।

ॐ मः अस्त्राय फट् प्राच्याम् (पूर्वकी ओर चुटकी बजाये)।

ॐ मः अस्त्राय फट् आग्नेय्याम् (अग्निकोणमें चुटकी बजाये)।

ॐ मः अस्त्राय फट् अवाच्याम् (दक्षिणकी ओर चुटकी बजाये) ।

ॐ मः अस्त्राय फट् नैर्ऋत्याम् (नैर्ऋत्यकोणमें चुटकी बजाये) ।

ॐ मः अस्त्राय फट् प्रतीच्याम् (पश्चिमकी ओर चुटकी बजाये) ।

ॐ मः अस्त्राय फट् वायव्याम् (वायुकोणमें चुटकी बजाये) ।

ॐ मः अस्त्राय फट् उदीच्याम् (उत्तरकी ओर चुटकी बजाये) ।

ॐ मः अस्त्राय फट् ऐशान्याम् (ईशानकोणमें चुटकी बजाये) ।

ॐ मः अस्त्राय फट् ऊर्ध्वायाम् (ऊपरकी ओर चुटकी बजाये) ।

ॐ मः अस्त्राय फट् अधरायाम् (नीचेकी ओर चुटकी बजाये) ।

अथ श्रीनारायणकवचम्

राजोवाच

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ।
क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥
भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ।
यथाऽऽततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच

वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ।
नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥

विश्वरूप उवाच

धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ।
कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥ ४ ॥
नारायणमयं वर्म संनह्येद् भय आगते ।
पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥ ५ ॥
मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोंकारादीनि विन्यसेत् ।
ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥ ६ ॥
करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ।
प्रणवादियकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥ ७ ॥
न्यसेद्धृदय ओंकारं विकारमनु मूर्धनि ।
षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया दिशेत् ॥ ८ ॥
वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसंधिषु ।
मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद् बुधः ॥ ९ ॥
सविसर्गं फडन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ।
ॐ विष्णवे नम इति ॥ १० ॥
आत्मानं परमं ध्यायेद् ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ।
विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥ ११ ॥

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां
न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ।
दरारिचर्मासिगदेषुचाप-
पाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥ १२ ॥
जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्ति-
र्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ।
स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात्
त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥ १३ ॥
दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः
पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं
दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥ १४ ॥
रक्षत्वसौ माध्वनि यज्ञकल्पः
स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ।
रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे
सलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽस्मान् ॥ १५ ॥
मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादा-
न्नारायणः पातु नरश्च हासात् ।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः
पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥ १६ ॥
सनत्कुमारोऽवतु कामदेवा-
द्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ।
देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात्
कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥ १७ ॥
धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद्
द्वन्द्वाद् भयादृषभो निर्जितात्मा ।
यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद्
बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्रः ॥ १८ ॥
द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्
बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात् ।
कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु
धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥ १९ ॥

मां केशवो गदया प्रातरव्याद्
गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः ।
नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्ति-
र्मध्यंदिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥२०॥
देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा
सायं त्रिधामावतु माधवो माम् ।
दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे
निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥
श्रीवत्सधामापररात्र ईशः
प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ।
दामोदरोऽव्यादनुसंध्यं प्रभाते
विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥
चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि
भ्रमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम् ।
दंदग्धि दंदग्ध्यरिसैन्यमाशु
कक्षं यथा वातसखो हुताशः ॥२३॥
गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे
निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि ।
कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षो-
भूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥२४॥
त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृ-
पिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ।
दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो
भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥
त्वं तिग्मधारासिवरारिसैन्य-
मीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।
चक्षूंषि चर्मञ्छतचन्द्र छादय
द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥२६॥
यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ।
सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा ॥२७॥
सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ।
प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः ॥२८॥
गरुडो भगवान् स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः ।
रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥२९॥
सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ।
बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः ॥३०॥
यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ।
सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥३१॥

यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ।
भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥
तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥
विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्ता-
दन्तर्बहिर्भगवान् नारसिंहः ।
प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन
स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥३४॥
मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ।
विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥३५॥
एतद् धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ।
पदा वा संस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥
न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ।
राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥३७॥
इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन् द्विजः ।
योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥
तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ।
ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥
गगनान्न्यपतत् सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ।
स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ।
प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥४०॥

श्रीशुक उवाच

य इदं शृणुयात् काले यो धारयति चादृतः ।
तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥४१॥
एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥४२॥

(श्रीमद्भागवत ६ । ८ । १–४२)

इति नारायणकवचं सम्पूर्णम् ।

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! देवराज इन्द्रने जिस-से सुरक्षित होकर शत्रुओंकी चतुरङ्गिणी सेनाको खेल-खेलमें—अनायास ही जीतकर त्रिलोकीकी राजलक्ष्मीका उपभोग किया, आप उस 'नारायणकवच'को मुझे सुनाइये और यह भी बतलाइये कि उन्होंने उससे सुरक्षित होकर रणभूमिमें किस प्रकार आक्रमणकारी शत्रुओंपर विजय प्राप्त की ॥ १-२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! जब देवताओंने विश्व-रूपको पुरोहितरूपमें वरण किया, तब देवराज इन्द्रके प्रश्न करनेपर

विश्वरूपने उन्हें 'नारायणकवच'का उपदेश किया। तुम एकाग्र-चित्तसे उसका श्रवण करो ॥ ३ ॥

विश्वरूपने कहा—देवराज इन्द्र! भयका अवसर उपस्थित होनेपर 'नारायणकवच' धारण करके अपने शरीरकी रक्षा कर लेनी चाहिये। उसकी विधि यह है कि पहले हाथ-पैर धोकर आचमन करे, फिर हाथमें कुशकी पवित्री धारण करके उत्तर-मुँह बैठ जाय। इसके बाद कवचधारणपर्यन्त और कुछ न बोलनेका निश्चय करके पवित्रतासे 'ॐ नमो नारायणाय' और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इन मन्त्रोंके द्वारा हृदयादि-अङ्गन्यास तथा अङ्गुष्ठादि करन्यास करे। पहले 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्रके ॐ आदि आठ अक्षरोंका क्रमशः पैरों, घुटनों, जाँघों, पेट, हृदय, वक्षःस्थल, मुख और सिरमें न्यास करे। अथवा पूर्वोक्त मन्त्रके यकारसे लेकर ॐकारपर्यन्त आठ अक्षरोंका सिरसे आरम्भ करके उन्हीं आठ अङ्गोंमें विपरीतक्रमसे न्यास करे ॥ ४—६ ॥ तदनन्तर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रके 'ॐ' से लेकर 'य' पर्यन्त बारह अक्षरोंका दायीं तर्जनीसे बायीं तर्जनीतक दोनों हाथकी आठ अँगुलियोंमें और दोनों अँगूठोंकी दो-दो गाँठोंमें न्यास करे ॥ ७ ॥ फिर 'ॐ विष्णवे नमः' इस मन्त्रके पहले अक्षर 'ॐ'का हृदयमें, फिर 'वि'का ब्रह्मरन्ध्रमें, 'ष्' का भौंहोंके बीचमें, 'ण'का चोटीमें, 'वे'का दोनों नेत्रोंमें और 'न'का शरीरकी सब गाँठोंमें न्यास करे। तदनन्तर 'ॐ मः अस्त्राय फट्' कहकर दिग्बन्ध करे। इस प्रकार न्यास करनेसे इस विधिको जाननेवाला पुरुष मन्त्रस्वरूप हो जाता है ॥ ८—१० ॥ इसके बाद समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्यसे परिपूर्ण इष्टदेव परमेश्वरका ध्यान करे और अपनेको भी तद्रूप ही चिन्तन करे। तत्पश्चात् विद्या, तेज और तपःस्वरूप इस कवचका पाठ करे—॥ ११ ॥

'भगवान् श्रीहरि गरुड़जीकी पीठपर अपने चरण-कमल रखे हुए हैं। अणिमादि आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। आठ हाथोंमें वे शङ्ख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश (फंदा) धारण किये हुए हैं। वे ही ॐकारस्वरूप प्रभु सब प्रकारसे सब ओरसे मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ मत्स्यमूर्ति भगवान् जलके भीतर जलजन्तुओंके रूपमें स्थित वरुणके पाशसे मेरी रक्षा करें। मायासे ब्रह्मचारीका रूप धारण करनेवाले वामनभगवान् स्थलपर और विश्वरूप श्रीत्रिविक्रमभगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥ जिनके घोर अट्टहास करनेपर सब दिशाएँ गूँज उठी थीं और गर्भवती दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर गये थे, वे दैत्य-यूथपतियोंके शत्रु भगवान् नृसिंह जंगल, रणभूमि आदि विकट स्थानोंमें मेरी रक्षा करें ॥ १४ ॥ अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको उठा लेनेवाले यज्ञमूर्ति वराहभगवान् मार्गमें, परशुरामजी पर्वतोंके शिखरोंपर और लक्ष्मणजीके सहित भरतके बड़े भाई भगवान् रामचन्द्र प्रवासके समय मेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥ भगवान् नारायण मारण-मोहन आदि भयंकर अभिचारों और सब प्रकारके प्रमादोंसे मेरी रक्षा करें। ऋषिश्रेष्ठ नर गर्वसे, योगेश्वर भगवान् दत्तात्रेय योगके अन्तरायसे और त्रिगुणाधिपति भगवान् कपिल कर्मबन्धनोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १६ ॥ परमर्षि सनत्कुमार कामदेवसे, हयग्रीवभगवान् मार्गमें चलते समय देवमूर्तियोंको नमस्कार आदि न करनेके अपराधसे, देवर्षि नारद सेवापराधों-से और भगवान् कच्छप सब प्रकारके नरकोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १७ ॥ भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्यसे, जितेन्द्रिय भगवान् ऋषभदेव सुख-दुःख आदि भयदायक द्वन्द्वोंसे, यज्ञभगवान् लोकापवादसे, बलरामजी मनुष्यकृत कष्टसे और श्रीशेषजी क्रोधवश नामक सर्पोंके गणसे मेरी रक्षा करें ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अज्ञानसे तथा बुद्धदेव पाखण्डियोंसे और प्रमादसे मेरी रक्षा करें। धर्मरक्षाके लिये महान् अवतार धारण करनेवाले भगवान् कल्कि पापबहुल कलिकालके दोषोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १९ ॥ प्रातःकाल भगवान् केशव अपनी गदा लेकर, कुछ दिन चढ़ आनेपर भगवान् गोविन्द अपनी बाँसुरी लेकर, दोपहरके पहले भगवान् नारायण अपनी तीक्ष्ण शक्ति लेकर और दोपहरको भगवान् विष्णु चक्रराज सुदर्शन लेकर मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥ तीसरे पहरमें भगवान् मधुसूदन अपना प्रचण्ड धनुष लेकर मेरी रक्षा करें। सायंकालमें ब्रह्मा आदि त्रिमूर्तियोंमें प्रकट होनेवाले माधव, सूर्यास्तके बाद हृषीकेश, अर्धरात्रिके पूर्व तथा अर्धरात्रिके समय अकेले भगवान् पद्मनाभ मेरी रक्षा करें ॥ २१ ॥ रात्रिके पिछले पहरमें श्रीवत्सलाञ्छन श्रीहरि, उषाकालमें खड्गधारी भगवान् जनार्दन, सूर्योदयसे पूर्व श्रीदामोदर और सम्पूर्ण संध्याओंमें कालमूर्ति भगवान् विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ २२ ॥

'सुदर्शन! आपका आकार चक्र (रथके पहिये) की तरह है। आपके किनारेका भाग प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त तीव्र है। आप भगवान्‌की प्रेरणासे सब ओर घूमते रहते हैं। जैसे आग वायुकी सहायतासे सूखे घास-फूसको जला डालती है, वैसे ही आप हमारी शत्रुसेनाको

शीघ्र-से-शीघ्र जला दीजिये, जला दीजिये ॥ २२ ॥ कौमोदकी गदा ! आपसे छूटनेवाली चिनगारियोंका स्पर्श वज्रके समान असह्य है । आप भगवान् अजितकी प्रिया हैं और मैं उनका सेवक हूँ । इसलिये आप कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत और प्रेतादि ग्रहोंको अभी कुचल डालिये, कुचल डालिये तथा मेरे शत्रुओंको चूर-चूर कर दीजिये ॥ २४ ॥ शङ्खश्रेष्ठ ! आप भगवान् श्रीकृष्णके फूँकनेसे भयंकर शब्द करके मेरे शत्रुओंका दिल दहला दीजिये एवं यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृका, पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस आदि भयावने प्राणियोंको यहाँसे झटपट भगा दीजिये ॥ २५ ॥ भगवान्की श्रेष्ठ तलवार ! आपकी धार बहुत तीक्ष्ण है । आप भगवान्की प्रेरणासे मेरे शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर दीजिये । भगवान्की प्यारी ढाल ! आपमें सैकड़ों चन्द्राकार मण्डल हैं । आप पापदृष्टि पापात्मा शत्रुओंकी आँखें बंद कर दीजिये और उन्हें सदाके लिये अंधा बना दीजिये ॥ २६ ॥

'सूर्य आदि ग्रह, धूमकेतु (पुच्छल तारे) आदि केतु, दुष्ट मनुष्य, सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु, दाढ़ोंवाले हिंसक पशु, भूत-प्रेत आदि तथा पापी प्राणियोंसे हमें जो-जो भय हो और जो-जो हमारे मङ्गलके विरोधी हों, वे सभी भगवान्के नाम, रूप तथा आयुधोंका कीर्तन करनेसे तत्काल नष्ट हो जायँ ॥ २७-२८ ॥ बृहद्, रथन्तर आदि सामवेदीय स्तोत्रोंसे जिनकी स्तुति की जाती है, वे वेदमूर्ति भगवान् गरुड और विष्वक्सेनजी अपने नामोच्चारणके प्रभावसे हमें सब प्रकारकी विपत्तियोंसे बचायें ॥ २९ ॥ श्रीहरिके नाम, रूप, वाहन, आयुध और श्रेष्ठ पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंको सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचायें ॥ ३० ॥

'जितना भी कार्य अथवा कारणरूप जगत् है, वह वास्तवमें भगवान् ही हैं, इस सत्यके प्रभावसे हमारे सारे उपद्रव नष्ट हो जायँ ॥ ३१ ॥ जो लोग ब्रह्म और आत्माकी एकताका अनुभव कर चुके हैं, उनकी दृष्टिमें भगवान्का स्वरूप समस्त विकल्पों—भेदोंसे रहित है; फिर भी वे अपनी माया-शक्तिके द्वारा भूषण, आयुध और रूप नामक शक्तियोंको धारण करते हैं । यह बात निश्चितरूपसे सत्य है । इस कारण सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि सदा-सर्वत्र, सब स्वरूपोंसे हमारी रक्षा करें ॥ ३२-३३ ॥ जो अपने भयंकर अट्टहाससे सब लोगोंके भयको भगा देते हैं और अपने तेजसे सबका तेज ग्रस लेते हैं, वे भगवान् नृसिंह दिशा-विदिशाओंमें, नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर—सब ओर हमारी रक्षा करें ॥ ३४ ॥'

देवराज इन्द्र ! मैंने तुम्हें यह नारायणकवच सुना दिया । इस कवचसे तुम अपनेको सुरक्षित कर लो । बस, फिर तुम अनायास ही सब दैत्य-यूथपतियोंको जीत लोगे ॥ ३५ ॥ इस नारायणकवचको धारण करनेवाला पुरुष जिसको भी अपने नेत्रोंसे देख लेता अथवा पैरसे छू देता है, वह तत्काल समस्त भयोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ जो इस वैष्णवी विद्याको धारण कर लेता है, उसे राजा, डाकू, प्रेत-पिशाचादि और बाघ आदि हिंसक जीवोंसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं होता ॥ ३७ ॥ देवराज ! प्राचीन कालकी बात है, एक कौशिकगोत्रके ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके योगधारणासे अपना शरीर मरुभूमिमें त्याग दिया ॥ ३८ ॥ जहाँ उस ब्राह्मणका शरीर पड़ा था, उसके ऊपरसे एक दिन गन्धर्वराज चित्ररथ अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर बैठकर निकले ॥ ३९ ॥ वहाँ आते ही वे नीचेकी ओर सिर किये विमानसहित आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़े । इस घटनासे उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । जब उन्हें वालखिल्य मुनियोंने बतलाया कि यह नारायण-कवच धारण करनेका प्रभाव है, तब उन्होंने उस ब्राह्मण-देवताकी हड्डियोंको ले जाकर पूर्ववाहिनी सरस्वती नदीमें प्रवाहित कर दिया और फिर स्नान करके वे अपने लोकको गये ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जो पुरुष इस नारायणकवचको समयपर सुनता है और जो आदरपूर्वक इसे धारण करता है, उसके सामने सभी प्राणी आदरसे झुक जाते हैं और वह सब प्रकारके भयोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥ परीक्षित् ! शतक्रतु इन्द्रने आचार्य विश्वरूपसे यह वैष्णवी विद्या प्राप्त करके रणभूमिमें असुरोंको जीत लिया और वे त्रैलोक्य-लक्ष्मीका उपभोग करने लगे ॥ ४२ ॥

सर्वैश्वर्यप्रद श्रीलक्ष्मीकवच

श्रीनारायण उवाच

सर्वसम्पत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालया स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यबीजं च महतां कवचं परमाद्भुतम्॥
ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। श्रीं मे पातु कपालं च लोचने श्रीं श्रियै नमः॥
ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदावतु। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम्॥
ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तं सदावतु। ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदावतु॥
ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदावतु। ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदावतु॥
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदावतु। ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदावतु॥
ॐ श्रीं श्रीकृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदावतु। ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा मम हस्तौ सदावतु॥
श्रीं श्रीनिवासकान्तायै मम पादौ सदावतु। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदावतु॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया। पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु श्रीः स्वयम्। उत्तरे कमला पातु ऐशान्यां सिन्धुकन्यका॥
नारायणेशी पातूर्ध्वमधो विष्णुप्रियावतु। सततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये। यत् फलं लभते धर्मी कवचेन ततोऽधिकम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान् प्रतिजन्मनि॥
अस्ति लक्ष्मीर्गृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम्। देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत्॥
स सर्वपुण्यवान् धीमान् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि। गुरुभक्ताय शिष्याय शरण्याय प्रकाशयेत्॥
इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम्। कोटिसंख्यप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपति० ३८। ६४-८२)

भगवान् नारायण कहते हैं—सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके प्रदाता इस कवचके प्रजापति ऋषि हैं, बृहती छन्द है, स्वयं पद्मालया (लक्ष्मी) देवी हैं और धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी प्राप्तिमें इसका विनियोग किया जाता है। यह परम अद्भुत कवच महापुरुषोंके पुण्यका कारण है। 'ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तककी रक्षा करे। 'श्रीं' मेरे कपालकी और 'श्रीं श्रियै नमः' नेत्रोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा दोनों कानोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी नासिकाकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा' सदा मेरे दाँतोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै स्वाहा' सदा मेरे दाँतोंके छिद्रोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं नारायणेशायै स्वाहा' सदा मेरे कण्ठकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं केशवकान्तायै स्वाहा' सदा मेरे कंधोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा' सदा नाभिकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे स्वाहा' सदा मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं श्रीकृष्णकान्तायै स्वाहा' सदा मेरी पीठकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे हाथोंकी रक्षा करे। 'श्रीं श्रीनिवासकान्तायै स्वाहा' सदा मेरे पैरोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे सर्वाङ्गकी रक्षा करे। पूर्व दिशामें महालक्ष्मी और अग्निकोणमें कमलालया मेरी रक्षा करें। दक्षिणमें पद्मा और नैर्ऋत्यकोणमें श्रीहरिप्रिया मेरी रक्षा करें। पश्चिममें पद्मालया और वायव्यकोणमें स्वयं श्री मेरी रक्षा करें। उत्तरमें कमला और ईशानकोणमें सिंधुकन्यका मेरी रक्षा करें। ऊर्ध्वभागमें नारायणेशी और अधोभागमें विष्णुप्रिया मेरी रक्षा करें। विष्णुप्राणाधिका सदा सब ओरसे मेरी रक्षा करें।

वत्स ! (नारद !) इस प्रकार मैंने तुमसे इस सर्वैश्वर्यप्रद नामक परम अद्भुत कवचका वर्णन कर दिया। यह समस्त मन्त्रसमुदायका मूर्तिमान् स्वरूप है। धर्मात्मा पुरुष किसी (योग्य) ब्राह्मणको मेरुके समान सुवर्णका पहाड़ दान करके जो फल पाता है, उससे कहीं अधिक फल इस कवचसे मिलता है। जो मनुष्य गुरुकी अर्चना करके विधिवत् इस कवचको गलेमें अथवा दाहिनी भुजापर धारण करता है, वह प्रत्येक जन्ममें श्रीसम्पन्न होता है और उसके घरमें लक्ष्मी सौ पीढ़ियोंतक निश्चलरूपसे निवास करती हैं। वह देवेन्द्रों तथा राक्षसराजोंद्वारा निश्चय ही अवध्य हो जाता है। जिसके गलेमें यह कवच विद्यमान रहता है, उस बुद्धिमान्ने सभी प्रकारके पुण्य कर लिये, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण कर ली और समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। लोभ, मोह और भयसे भी इसे जिस-किसीको नहीं देना चाहिये; अपितु शरणागत एवं गुरुभक्त शिष्यके सामने ही प्रकट करना चाहिये। इस कवचका ज्ञान प्राप्त किये बिना जो जगज्जननी लक्ष्मीका जप करता है, करोड़ोंकी संख्यामें जप करनेपर भी उसके लिये मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।

श्रीकनकधारास्तोत्रम्

[कथा प्रसिद्ध है कि आचार्य श्रीशंकरभगवत्पाद एक दिन भिक्षाके लिये किसी ब्राह्मण सद्-गृहस्थके द्वारपर गये। वह ब्राह्मण-परिवार अत्यन्त ही दरिद्र था। आचार्यके रूपमें एक सम्मान्य अतिथिको अपने द्वारपर आया देख भक्तिमती गृहिणी बड़े असमञ्जसमें पड़ गयी; कारण, उसके पास भिक्षारूपमें देनेके लिये कुछ भी न था। बहुत ढूँढनेपर उसे घरमें एक आँवलेका फल मिला, जिसे लेकर वह संन्यासीके पास पहुँची और बड़े ही संकोचके साथ उसे उन्हें अर्पण करने लगी। आचार्यको उसकी दुरवस्थापर तरस आ गया। उन्होंने तत्काल ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री-देवी, भगवान् नारायणकी अर्धाङ्गिनी, वात्सल्यमयी भगवती महालक्ष्मीकी स्तुति प्रारम्भ की और उनकी वाणीसे अनायास ही करुणापूर्ण ऐसी कोमल-कान्त पदावली प्रस्फुटित हुई, जिसे सुनकर भगवती महालक्ष्मी देखते-देखते आचार्यके सम्मुख अपने त्रिभुवन-मोहन रूपमें प्रकट हो गयीं और कोमल शब्दोंमें पूछने लगीं—'मुझे कैसे स्मरण किया ?' आचार्यने सारी बात कह सुनायी और जगदम्बासे प्रार्थना की कि वे इस दरिद्र परिवारपर कृपा-कटाक्षकी वर्षा करें। भगवतीने बताया कि उस गृहस्थका प्रारब्ध ऐसा नहीं है कि उसे इस जन्ममें धनकी प्राप्ति हो सके। आचार्यने बड़े ही विनीत शब्दोंमें करुणामयी अम्बासे निवेदन किया—'पूर्वजन्ममें इस ब्राह्मणने कोई ऐसा सुकृत नहीं किया है, जिसके फलस्वरूप उसे धन-सम्पत्ति दी जा सके—इससे क्या हुआ ? मेरे-जैसे भिक्षुकको आँवलेका दान देकर इसने जो महान् पुण्यराशि अर्जित की है, उसके कारण यह अतुल धन-सम्पत्तिका अधिकारी हो गया है। अतः उसपर कृपा अवश्य होनी चाहिये।' इस युक्तिका भगवती खण्डन नहीं कर सकीं और उसी समय उस गृहस्थके आँगनमें सोनेकी वर्षा हुई, जिसके फलस्वरूप उस गृहस्थका दारिद्र्य सदाके लिये मिट गया और वह प्रचुर धन-सम्पत्तिका स्वामी हो गया। इस घटनाका शंकर-दिग्विजयके चतुर्थ सर्गमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है। तभी-से इस स्तोत्रका नाम 'कनकधारास्तोत्र' हो गया। इसका श्रद्धापूर्वक आर्त्तभावसे पाठ करनेपर बहुतोंको धन-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती हुई सुनी गयी है। —सम्पादक]

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्।
अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला माङ्गल्यदास्तु मम मङ्गलदेवतायाः ॥ १ ॥
मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि।
माला दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या सा मे श्रियं दिशतु सागरसम्भवायाः ॥ २ ॥
विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्षमानन्दहेतुरधिकं मधुविद्विषोऽपि।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्द्धमिन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः ॥ ३ ॥
आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्दमानन्दकन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम्।
आकेरस्थितकनीनिकपक्ष्म नेत्रं भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः ॥ ४ ॥

बाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या हारावलीव हरिनीलमयी विभाति।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः॥ ५॥
कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभारेर्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव।
मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्तिर्भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः॥ ६॥
प्राप्तं पदं प्रथमतः किल यत्प्रभावान्माङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन।
मय्यापतेत्तदिह मन्थरमीक्षणार्धं मन्दालसं च मकरालयकन्यकायाः॥ ७॥
दद्याद् दयालुपवनो द्रविणाम्बुधारामस्मिन्नकिंचनविहङ्गशिशौ विषण्णे।
दुष्कर्मघर्ममपनीय चिराय दूरं नारायणप्रणयिनीनयनाम्बुवाहः॥ ८॥
इष्टा विशिष्टमतयोऽपि यया दयार्द्रदृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते।
दृष्टिः प्रहृष्टकमलोदरदीप्तिरिष्टां पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः॥ ९॥
गीर्देवतेति गरुडध्वजभामिनीति शाकम्भरीति शशिशेखरवल्लभेति।
सृष्टिस्थितिप्रलयकेलिषु संस्थितायै तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै॥१०॥
श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणार्णवायै।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै॥ ११॥
नमोऽस्तु नालीकनिभाननायै नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूत्यै।
नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै नमोऽस्तु नारायणवल्लभायै॥ १२॥
सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि साम्राज्यदानविभवानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम्॥ १३॥
यत्कटाक्षसमुपासनाविधिः सेवकस्य सकलार्थसम्पदः।
संतनोति वचनाङ्गमानसैस्त्वां मुरारिहृदयेश्वरीं भजे॥ १४॥
सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतमांशुकगन्धमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम्॥ १५॥
दिग्घस्तिभिः कनककुम्भमुखावसृष्टस्वर्वाहिनीविमलचारुजलप्लुताङ्गीम्।
प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेषलोकाधिनाथगृहिणीममृताब्धिपुत्रीम्॥ १६॥
कमले कमलाक्षवल्लभे त्वं करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गैः।
अवलोकय मामकिंचनानां प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः॥ १७॥
स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम्।
गुणाधिका गुरुतरभाग्यभागिनो भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः॥ १८॥

इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं कनकधारास्तोत्रं सम्पूर्णम्

जैसे भ्रमरी अधखिले कुसुमोंसे अलंकृत तमाल-तरुका आश्रय लेती है, उसी प्रकार जो श्रीहरिके रोमाञ्चसे सुशोभित श्रीअङ्गोंपर निरन्तर पड़ता रहता है तथा जिसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्यका निवास है, सम्पूर्ण मङ्गलोंकी अधिष्ठात्री देवी भगवती महालक्ष्मीका वह कटाक्ष मेरे लिये मङ्गलदायी हो॥ १॥ जैसे भ्रमरी महान् कमल-दलपर आती-जाती या मँडराती रहती है, उसी प्रकार जो मुर-शत्रु श्रीहरिके मुखारविन्दकी ओर बारंबार प्रेमपूर्वक जाती और लज्जाके कारण लौट आती है, समुद्रकन्या लक्ष्मीकी वह मनोहर मुग्ध दृष्टिमाला मुझे धन-सम्पत्ति प्रदान करे॥ २॥ जो सम्पूर्ण देवताओंके अधिपति इन्द्रके पदका वैभव-विलास देनेमें समर्थ है, मधुहन्ता श्रीहरिको भी अधिकाधिक आनन्द प्रदान करनेवाली है तथा जो नील-कमलके भीतरी भागके समान मनोहर जान पड़ती है, वह लक्ष्मीजीके अधखुले नेत्रोंकी दृष्टि

क्षणभरके लिये मुझपर भी थोड़ी-सी अवश्य पड़े ॥ ३ ॥ शेषशायी भगवान् विष्णुकी धर्मपत्नी श्रीलक्ष्मीजीका नेत्र हमें ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला हो, जिसकी पुतली तथा बरौनियाँ अनङ्गके वशीभूत (प्रेमपरवश) हो अधखुले, किंतु साथ ही निर्निमेष नयनोंसे देखनेवाले आनन्दकंद श्रीमुकुन्दको अपने निकट पाकर कुछ तिरछी हो जाती हैं ॥ ४ ॥ जो भगवान् मधुसूदनके कौस्तुभमणि-मण्डित वक्षःस्थलमें इन्द्रनीलमयी हारावली-सी सुशोभित होती है तथा उनके भी मनमें काम (प्रेम) का संचार करनेवाली है, वह कमल-कुञ्जवासिनी कमलाकी कटाक्षमाला मेरा कल्याण करे ॥ ५ ॥ जैसे मेघोंकी घटामें बिजली चमकती है, उसी प्रकार जो कैटभशत्रु श्रीविष्णुके काली मेघमालाके समान श्यामसुन्दर वक्षःस्थलपर प्रकाशित होती हैं, जिन्होंने अपने आविर्भावसे भृगुवंशको आनन्दित किया है तथा जो समस्त लोकोंकी जननी हैं, उन भगवती लक्ष्मीकी पूजनीया मूर्ति मुझे कल्याण प्रदान करे ॥ ६ ॥ समुद्र-कन्या कमलाकी वह मन्द, अलस, मन्थर और अर्धोन्मीलित दृष्टि, जिसके प्रभावसे कामदेवने मङ्गलमय भगवान् मधुसूदनके हृदयमें प्रथम बार स्थान प्राप्त किया था, यहाँ मुझपर पड़े ॥ ७ ॥ भगवान् नारायणकी प्रेयसी लक्ष्मीका नेत्ररूपी मेघ दयारूपी अनुकूल पवनसे प्रेरित हो दुष्कर्म (धनागम-विरोधी अशुभ प्रारब्ध) रूपी घामको चिरकालके लिये दूर हटाकर विषादरूपी धर्मजन्यतापसे पीड़ित मुझ दीनरूपी चातक-पोतपर धनरूपी जलधाराकी वृष्टि करे ॥ ८ ॥ विशिष्ट बुद्धिवाले मनुष्य जिनके प्रीतिपात्र होकर जिस दयादृष्टिके प्रभावसे स्वर्गपदको सहज ही प्राप्त कर लेते हैं, पद्मासना पद्माकी वह विकसित कमल-गर्भके समान कान्तिमती दृष्टि मुझे मनोवाञ्छित पुष्टि प्रदान करे ॥ ९ ॥ जो सृष्टि-लीलाके समय वाग्देवता (ब्रह्म-शक्ति) के रूपमें स्थित होती हैं, पालन-लीला करते समय भगवान् गरुड़ध्वजकी पत्नी लक्ष्मी (या वैष्णवी शक्ति) के रूपमें विराजमान होती हैं तथा प्रलय-लीलाके कालमें शाकम्भरी (भगवती दुर्गा) अथवा चन्द्रशेखरवल्लभा पार्वती (रुद्र-शक्ति) के रूपमें अवस्थित होती हैं, त्रिभुवनके एकमात्र पिता भगवान् नारायणकी उन नित्ययौवना प्रेयसी श्रीलक्ष्मीजीको नमस्कार है ॥ १० ॥ मातः ! शुभ कर्मोंका फल देनेवाली श्रुतिके रूपमें आपको प्रणाम है । रमणीय गुणोंकी सिन्धुरूपा रतिके रूपमें आपको नमस्कार है । कमलवनमें निवास करनेवाली शक्तिस्वरूपा लक्ष्मीको नमस्कार है तथा पुष्टिरूपा पुरुषोत्तम-प्रियाको नमस्कार है ॥ ११ ॥ कमलवदना कमलाको नमस्कार है । क्षीरसिन्धुसम्भूता श्रीदेवीको नमस्कार है । चन्द्रमा और सुधाकी सगी बहनको नमस्कार है । भगवान् नारायणकी वल्लभाको नमस्कार है ॥ १२ ॥

कमलसदृश नेत्रोंवाली माननीया माँ ! आपके चरणोंमें किये गये प्रणाम सम्पत्ति प्रदान करनेवाले, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको आनन्द देनेवाले, साम्राज्य देनेमें समर्थ और सारे पापोंको हर लेनेके लिये सर्वथा उद्यत हैं; वे सदा मुझे ही अवलम्बन करें (मुझे ही आपकी चरण-वन्दनाका शुभ अवसर सदा प्राप्त होता रहे) ॥ १३ ॥ जिनके कृपा-कटाक्षके लिये की गयी उपासना उपासकके लिये सम्पूर्ण मनोरथों और सम्पत्तियोंका विस्तार करती है, श्रीहरिकी हृदयेश्वरी उन्हीं आप लक्ष्मीदेवीका मैं मन, वाणी और शरीरसे भजन करता हूँ ॥ १४ ॥ भगवति हरिप्रिये ! तुम कमलवनमें निवास करनेवाली हो, तुम्हारे हाथोंमें लीला-कमल सुशोभित है । तुम अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र, गन्ध और माला आदिसे शोभा पा रही हो । तुम्हारी झाँकी बड़ी मनोरम है । त्रिभुवनका ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली देवि ! मुझपर प्रसन्न हो जाओ ॥ १५ ॥ दिग्गजोंद्वारा सुवर्ण-कलशके मुखसे गिराये गये आकाशगङ्गाके निर्मल एवं मनोहर जलसे जिनके श्रीअङ्गोंका अभिषेक (स्नान-कार्य) सम्पादित होता है, सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर भगवान् विष्णुकी गृहिणी और क्षीरसागरकी पुत्री उन जगज्जननी लक्ष्मीको मैं प्रातःकाल प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥ कमल-नयन केशवकी कमनीय कामिनी कमले ! मैं अकिंचन (दीन-हीन) मनुष्योंमें अग्रगण्य हूँ, अतएव तुम्हारी कृपाका स्वाभाविक पात्र हूँ । तुम उमड़ती हुई करुणाकी बाढ़की तरल-तरङ्गोंके समान कटाक्षोंद्वारा मेरी ओर देखो ॥ १७ ॥ जो लोग इन स्तुतियोंद्वारा प्रतिदिन वेदत्रयीस्वरूपा त्रिभुवन-जननी भगवती लक्ष्मीकी स्तुति करते हैं, वे इस भूतलपर महान् गुणवान् और अत्यन्त सौभाग्यशाली होते हैं तथा विद्वान् पुरुष भी उनके मनोभावको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं ॥ १८ ॥

गजेन्द्रकृत भगवान् श्रीहरिका स्तवन

[हिंदी-पद्यमें भावानुवादसहित]

[श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें गजेन्द्रमोक्षकी कथा है। द्वितीय अध्यायमें ग्राहके साथ गजेन्द्रके युद्धका वर्णन है, तृतीय अध्यायमें गजेन्द्रकृत भगवान्‌के स्तवन और गजेन्द्र-मोक्षका प्रसङ्ग है और चतुर्थ अध्यायमें गज-ग्राहके पूर्वजन्मका इतिहास है। श्रीमद्भागवतमें गजेन्द्रमोक्ष-आख्यानके पाठका माहात्म्य बतलाते हुए इसको स्वर्गप्रद तथा यशोदायक, कलियुगके समस्त पापोंका नाशक, दुःस्वप्न-नाशक और श्रेयःसाधक कहा गया है। तृतीय अध्यायका स्तवन बहुत ही उपादेय है। इसकी भाषा और भाव सिद्धान्तके प्रतिपादक और बहुत ही मनोहर हैं। भावके साथ स्तुति करते-करते मनुष्य तन्मय हो जाता है। महामना श्रीमालवीयजी महाराज कहा करते थे कि गजेन्द्रकृत इस स्तवनका आर्तभावसे पाठ करनेपर लौकिक-पारमार्थिक महान् संकटों और विघ्नोंसे छुटकारा मिल जाता है। अपने अनुभवोंकी चर्चा करते हुए उन्होंने एक बार लिखा था—'मैं नाकतक ऋणमें डूब गया था। मैंने गजेन्द्रमोक्ष-नामक स्तवनका विश्वासपूर्वक आर्तभावसे पाठ किया और मेरा ऋण उतर गया।' निष्कामभाव होनेपर अज्ञानके बन्धनसे छूटकर पुरुष भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। स्वयं भगवान्‌का वचन है—'जो रात्रिके शेषमें (ब्राह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें) जागकर इस स्तोत्रके द्वारा मेरा स्तवन करते हैं, उन्हें मैं मृत्युके समय निर्मल मति (अपनी स्मृति) प्रदान करता हूँ।' और 'अन्ते मतिः सा गतिः' के अनुसार उसे निश्चय ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है तथा इस प्रकार वह सदाके लिये जन्म-मृत्युके बन्धनसे छूट जाता है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार]

श्रीशुक उवाच

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्॥ १॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—

यों निश्चय कर व्यवसित मतिसे,
मन प्रथम हृदयसे जोड़ लिया।
फिर पूर्वजन्ममें अनुशिक्षित,
इस परम मन्त्रका जाप किया॥ १॥

गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि॥ २॥

गजेन्द्र बोला—

मनसे है ॐ नमन प्रभुको,
जिससे यह जड-चेतन बनता।
जो परम पुरुष, जो आदि बीज,
सर्वोपरि जिसकी ईश्वरता॥ २॥

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥ ३॥

जिसमें, जिससे, जिसके द्वारा
जगकी सत्ता, जो स्वयं वही।
जो कारण-कार्य—परे सबके;
जो निजभू, आज शरण्य वही॥ ३॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम्।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः॥ ४॥

अपनेमें ही अपनी माया-
से ही रचे हुए संसार—
को हो कभी प्रकट, अन्तर्हित,
कभी देखता उभय प्रकार॥
जो अविद्धदृक् साक्षी बनकर,
जो परसे भी सदा परे।
है जो स्वयं प्रकाशक अपना,
मेरी रक्षा आज करे॥ ४॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु।
तमस्तदाऽऽसीद् गहनं गभीरं
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः॥ ५॥

लोक-लोकपालोंका, इन
सबके कारणका भी संहार।
कर देता सम्पूर्ण रूपसे
महाकालका कठिन कुठार॥

अन्धकार तब छा जाता है,
एक गहन, गम्भीर, अपार ।
उसके पार चमकते जो विभु,
वे लें मुझको आज सँभार ॥ ५ ॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥

देवता तथा ऋषि लोग नहीं
जिनके स्वरूपको जान सके,
फिर कौन दूसरा जीव, भला,
जो उनको कभी बखान सके;
जो करते नाना रूप धरे,
लीला अनेक नटतुल्य रचा ।
है दुर्गम जिनका चरित-सिंधु,
वे महापुरुष लें मुझे बचा ॥ ६ ॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं
विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥

जो साधुस्वभावी, सर्वसुहृद्,
वे मुनिगण भी सब सङ्ग छोड़ ।
बस, केवलमात्र आत्माका
सब भूतोंसे सम्बन्ध जोड़ ॥
जिनके मङ्गलमय पद-दर्शन-
की इच्छासे वनमें पालन ।
करते अलोक व्रतका अखण्ड,
वे ही हैं मेरे अवलम्बन ॥ ७ ॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा
न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥

जिसका होता है जन्म नहीं,
केवल भ्रमसे होता प्रतीत;
जो कर्म और गुण-दोष तथा
जो नामरूपसे है अतीत;
रचनी होती जब सृष्टि किंतु,
जब करना होता उसका लय,
तब अङ्गीकृत कर लेता है
इन धर्मोंको वह यथासमय ॥ ८ ॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

उस परमेश्वर, उस परमब्रह्म,
उस अमित-शक्तिको नमस्कार !
जो अद्भुतकर्मा, जो अरूप,
फिर भी लेता बहुरूप धार ॥ ९ ॥

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥

परमात्मा जो सबका साक्षी,
उस आत्मदीपको नमस्कार ।
जिसतक जानेमें पथमें ही,
जाते वाणी-मन-चित्त हार ॥ १० ॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥

बन सतोगुणी सुनिवृत्तिमार्गसे
पाते जिसको विद्वज्जन ।
जो सुखस्वरूप निर्वाणजनित,
जो मोक्षधामपति, उसे नमन ॥ ११ ॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥

जो शान्त, घोर, जडरूप प्रकट
होते तीनों गुण धर्म धार,
उन साम्य, ज्ञानघन, निर्विशेष-
को नमस्कार है, नमस्कार ॥ १२ ॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥

सबके स्वामी, सबके साक्षी,
क्षेत्रज्ञ ! तुझे है नमस्कार ।
हे आत्ममूल, हे मूलप्रकृति,
हे पुरुष, नमस्ते बार-बार ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥

इन्द्रिय-विषयोंका जो द्रष्टा,
इन्द्रियानुभवका जो कारन;
जो व्यक्त असत्‌की छायामें,
हे सदाभास ! है तुझे नमन ॥ १४ ॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय
नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥

सबके कारण, निष्कारण भी,
हे विकृतिरहित सबके कारण !
तेरे चरणोंमें बार-बार
है नमस्कार मेरा अर्पण ॥
सब श्रुतियों, शास्त्रोंका सारे,
जो केवल एक अगाध निलय,
उस मोक्षरूपको नमस्कार,
जिसमें पाते सज्जन आश्रय ॥ १५ ॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥

जो ज्ञानरूपसे छिपा गुणोंके
बीच, काष्ठमें यथा अनल,
अभिव्यक्ति चाहता मन जिसका,
जिस समय गुणोंमें हो हलचल ॥
मैं नमस्कार करता उसको,
जो स्वयं प्रकाशित है उनमें ।
आत्मालोचन करके न रहे,
जो विधि-निषेधके बन्धनमें ॥ १६ ॥

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय
मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥

जो मेरे-जैसे शरणागत
जीवोंका हरता है बन्धन।
उस मुक्त, अमित करुणावाले,
आलस्यरहितके लिये नमन ॥
सब जीवोंके मनके भीतर,
जो है प्रतीत प्रत्यक्‌चेतन ।
बन अन्तर्यामी, हे भगवन् !
हे अपरिच्छिन्न ! है तुझे नमन ॥ १७ ॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-
र्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥

जिसका मिलना है सहज नहीं,
उन लोगोंको, जो सदा रमे—
लोगोंमें, धनमें, मित्रोंमें
अपनेमें, पुत्रोंमें, घरमें ॥
जो निर्गुण, जिसका हृदयबीच
जन अनासक्त करते चिन्तन,
हे ज्ञानरूप ! हे परमेश्वर !
हे भगवन् ! मेरा तुझे नमन ॥ १८ ॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥

जिनको विमोक्ष-धर्मार्थ-काम
की इच्छावाले जन भजकर ।
वाञ्छित फलको पा लेते हैं;
जो देते तथा अयाचित वर ॥
भी अपने भजनेवालोंको,
कर देते उनकी देह अमर ।
लें वे ही आज उबार मुझे,
इस संकटसे करुणासागर ॥ १९ ॥

एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥ २० ॥

जिनके अनन्य जन धर्म, अर्थ
या काम-मोक्ष, पुरुषार्थ सकल—
की चाह नहीं रखते मनमें,
जिनकी, बस, इतनी रुचि केवल—

अत्यन्त विलक्षण श्रीहरिके
जो चरित परम मङ्गल, सुन्दर।
आनन्द-सिन्धुमें मग्न रहें,
गा-गाकर उनको निसि-वासर ॥ २० ॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥

जो अविनाशी, जो सर्वव्याप्त,
सबका स्वामी, सबके ऊपर;
अव्यक्त, किंतु अध्यात्ममार्गके
पथिकोंको जो है गोचर;
इन्द्रियातीत, अति दूर-सदृश
जो सूक्ष्म तथा जो है अपार,
कर-कर बखान मैं आज रहा,
उस आदि पुरुषको ही पुकार ॥ २१ ॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः।
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥

उत्पन्न वेद, ब्रह्मादि देव,
ये लोक सकल, चर और अचर।
होते जिसकी, बस, स्वल्प कलासे
नाना नाम-रूप धरकर ॥ २२ ॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥ २३ ॥

ज्यों ज्वलित अग्निसे चिनगारी,
ज्यों रविसे किरणें निकल-निकल,
फिर लौट उन्हींमें जाती हैं,
गुण-कृत प्रपञ्च उस भाँति सकल—
मन, बुद्धि, सभी इन्द्रियाँ तथा
सब विविध योनियोंवाले तन—
का जिससे प्रकटन हो, जिसमें—
हो जाता है पुनरावर्त्तन ॥ २३ ॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्
निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥

वह नहीं देव, वह असुर नहीं,
वह नहीं मर्त्य, वह क्लीव नहीं।
वह कारण अथवा कार्य नहीं,
गुण, कर्म, पुरुष या जीव नहीं॥
सबका कर देनेपर निषेध
जो कुछ रह जाता शेष, वही।
जो है अशेष हो प्रकट आज,
हर ले मेरा सब क्लेश वही ॥ २४ ॥

जिजीविषे नाहमिहामुया कि-
मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-
स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥

कुछ चाह न जीवित रहनेकी,
जो तमसावृत बाहर-भीतर—
ऐसे इस हाथीके तनको,
क्या, भला, करूँगा मैं रखकर ?
इच्छा इतनी—बन्धन जिसका
सुदृढ़ न कालसे भी टूटे।
आत्माकी जिससे ज्योति ढँकी,
अज्ञान वही मेरा छूटे ॥ २५ ॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम्।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥

उस विश्वसृजक, अज, विश्वरूप,
जगसे बाहर, जग-सूत्रधार।
विश्वात्मा, ब्रह्म, परमपदको,
इस मोक्षार्थीका नमस्कार ॥ २६ ॥

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७ ॥

निज कर्म-जालको भक्तियोग-
से जला, योग-परिशुद्ध हृदय-
में जिसे देखते योगीजन,
योगेश्वर प्रति मैं नत सविनय ॥ २७ ॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।

प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥

हो सकता सहन नहीं जिसकी
त्रिगुणात्म-शक्तिका वेग प्रबल,
जो होता तथा प्रतीत धरे
इन्द्रिय-विषयोंका रूप सकल ॥
जो दुर्गम उन्हें, मलिन
विषयोंमें जो कि इन्द्रियोंके उलझे।
शरणागत-पालक, असित-शक्ति
हे ! बारंबार प्रणाम तुझे ॥ २८ ॥

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम्।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥

अनभिज्ञ जीव जिसकी माया-
कृत अहंकार द्वारा उपहत।
निज आत्मासे, मैं उस दुरन्त
महिमामय प्रभुके शरणागत ॥ २९ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—

यह निराकार-वपु भेदरहित-
की स्तुति गजेन्द्र-वर्णित सुनकर—
आकृति-विशेषवाले रूपोंके
अभिमानी ब्रह्मादि अमर—
आये जब उसके पास नहीं,
तब श्रीहरि, जो आत्मा घट-घट-
के होनेसे सब देवरूप,
हो गये वहाँ उस काल प्रकट ॥ ३० ॥

तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ ३१ ॥

वे देख उसे इस भाँति दुखी,
उसका यह आर्त्तस्तव सुनकर।
मन-सी गतिवाले पक्षिराजकी
चढ़े पीठ ऊपर सत्वर ॥
आ पहुँचे, था गजराज जहाँ,
निज करमें चक्र उठाये थे।
तब जगनिवासके साथ-साथ,
सुर भी स्तुति करते आये थे ॥ ३१ ॥

सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥ ३२ ॥

अतिशय बलशाली ग्राह जिसे,
था पकड़े हुए सरोवरमें,
गजराज देखकर श्रीहरिको,
आसीन गरुड़पर अम्बरमें—
खर चक्र हाथमें लिये हुए,
वह दुखिया उठा कमल करमें—
'हे विश्व-वन्द्य प्रभु ! नमस्कार'—
यह बोल उठा पीड़ित स्वरमें ॥ ३२ ॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
सम्पश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम् ॥ ३३ ॥

पीड़ामें उसको पड़ा देख,
भगवान् अजन्मा पड़े उतर—
अविलम्ब गरुड़से, फिर कृपया
झट खींच सरोवरसे बाहर,
कर गजको मकर-सहित, उसका
मुख चक्रधारसे चीर दिया।
देखते-देखते सुरगणके
हरिने गजेन्द्रको छुड़ा लिया ॥ ३३ ॥

श्रीविष्णुप्रिया तुलसीके पूजनका माहात्म्य एवं विधि

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा'—यह मन्त्रराज-कल्पतरु है। जो इस मन्त्रका उच्चारण करके विधिपूर्वक तुलसीकी पूजा करता है, उसे निश्चय ही सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। —भगवान् नारायण

स्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डमें एक कथा आती है। प्राचीनकालकी बात है। कश्मीरमें धर्माचरणसम्पन्न एवं श्रीविष्णुके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले हरिमेधा और सुमेधा नामके दो ब्राह्मण रहते थे। एक बार वे दोनों धर्मज्ञ ब्राह्मण तीर्थयात्राके लिये निकले। वे दुर्गम वनमें चलते हुए थक गये। वहाँ उन्होंने एक स्थानपर तुलसीका वन देखा। सुमेधाने तुलसीके उस महान् वनको देखकर उसकी परिक्रमा की और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

'ब्रह्मन्!' धर्मात्मा हरिमेधाने माहात्म्य और फल जाननेकी दृष्टिसे विनयपूर्वक सुमेधासे पूछा। 'अन्य देवताओं, तीर्थों, व्रतों और मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंके रहते हुए तुमने तुलसी-वनको क्यों प्रणाम किया!'

'विप्रवर!' समीपस्थ बरगदकी सुखद शीतल छाँहमें बैठकर सुमेधाने हरिमेधाको बताया—'प्राचीनकालमें देवताओं और असुरोंने क्षीरसागरका मन्थन किया। उससे ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, कौस्तुभमणि तथा धन्वन्तरिरूप भगवान् श्रीहरि और दिव्य ओषधियाँ प्रकट हुईं। जरा-मृत्यु-निवारक अमृतकलशको दोनों हाथोंमें लिये भगवान् श्रीविष्णु अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी कुछ बूँदें उक्त अमृतपर गिर पड़ीं। उनसे उसी क्षण मण्डलाकार तुलसी उत्पन्न हुईं। इस प्रकार वहाँ प्रकट हुई लक्ष्मी तथा तुलसीको ब्रह्मादि देवताओंने श्रीहरिकी सेवामें समर्पित किया और मङ्गलमूर्ति श्रीभगवान्ने उन्हें स्वीकार कर लिया। तभीसे तुलसी जगदाधार प्रभु विष्णुको अत्यन्त संतुष्ट करनेवाली हो गयीं। तुलसी निखिलसृष्टिनायक श्रीनारायण-की प्रियतमा हैं। इस कारण मैंने उनके चरणोंमें श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया है।'

द्विजोत्तम सुमेधा इस प्रकार हरिप्रियाका गुणगान कर ही रहे थे कि उनके सम्मुख आकाशसे सूर्यके समान दीप्तिमान् एक विमान उतरता हुआ दिखायी दिया। उनके सामने ही भयानक शब्दके साथ बरगदका वृक्ष गिर पड़ा और उसमेंसे दो तेजस्वी पुरुष निकले। यह अद्भुत दृश्य देखकर दोनों तीर्थयात्री ब्राह्मण भयाक्रान्त हो काँपने लगे। उन तेजस्वी पुरुषोंने हरिमेधा और सुमेधाको प्रणाम किया।

'आप दोनों कौन हैं?' डरते हुए ब्राह्मणोंने अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा—'आपका स्वरूप देवताओंकी तरह मनोहर, तेजःसम्पन्न एवं मङ्गलमय है। आपके कण्ठमें नूतन मन्दार-माला सुशोभित है। आप कोई देवता प्रतीत होते हैं।'

'द्विजवरो!' वृक्षसे निकले पुरुषोंने कहा—'हमारे माता, पिता, गुरु, बन्धु आदि सभी आप ही दोनों हैं।'

'मेरा नाम आस्तीक है।' फिर उनमेंसे ज्येष्ठने कहा—'मैं देवलोकका निवासी हूँ। एक बार मैं नन्दनवनमें पर्वतपर देवाङ्गनाओंके साथ क्रीड़ा कर रहा था कि युवतियोंके मोती और बेलाके हार टूटकर नीचे तपश्चर्यामें रत लोमश-मुनिपर गिर पड़े। अत्यन्त क्रुद्ध होकर महामुनिने मुझे शाप दे दिया—'तू ब्रह्मराक्षस होकर बरगदके वृक्षपर निवास कर।'

भयभीत होकर मैंने मुनिसे प्रार्थना की तो उन्होंने दयापूर्वक कहा—'जब तू किसी ब्राह्मणके मुखसे मङ्गलायतन विष्णुका नाम और वृन्दावनी (तुलसी) की महिमा सुनेगा, तब तत्क्षण तुझे उत्तम मोक्ष प्राप्त हो जायगा।' मैं दीर्घकालसे इस वटवृक्षपर निवास करता हुआ अत्यन्त दुःखी था। आज आपलोगोंके अनुग्रहसे मैं दुस्सह शापसे मुक्त हो गया।'

देवलोकनिवासी उक्त तेजस्वी पुरुषने दूसरे तेजस्वी पुरुषके सम्बन्धमें बताया—'ये पहले गुरुकी सेवामें लगे रहनेवाले संयमी मुनि थे। गुरुके आज्ञोल्लङ्घनके कारण ब्रह्मराक्षस हो गये; किंतु लक्ष्मीपति श्रीविष्णुके परमपावन नाम एवं विश्वपूजिता (तुलसी) की महिमा सुनकर मुक्त हो गये। आप दोनों आदर्श ब्राह्मणोंने तीर्थयात्राका फल तो यहीं प्राप्त कर लिया।'

उन तेजस्वी पुरुषोंने दोनों ब्राह्मणोंके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक बार-बार प्रणाम किया । फिर उनकी आज्ञा प्राप्तकर वे विमानमें बैठे और दिव्यलोकके लिये प्रस्थित हुए । दोनों ब्राह्मण सम्पूर्ण भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली विष्णु-प्रियतमा पुण्यमयी वृन्दाका गुणानुवाद गाते तीर्थ-यात्राके लिये आगे चले गये ।

× × ×

ब्रह्मवैवर्तपुराण तथा देवीभागवतादि पुराणोंमें एक कथा और आती है, जिसमें सर्वथा निःस्पृह परम प्रभु श्रीहरिने तुलसीको किस प्रकार अपनी प्रियतमा स्वीकार किया तथा इन महिमामयी परम पावनी देवीको वृक्ष क्यों होना पड़ा, इसका अत्यन्त विशद वर्णन है । वह कथा अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

परम पुण्यात्मा दक्षसावर्णि मनुके वंशमें इन्द्रसावर्णिके अनन्य शिवभक्त पुत्र वृषभध्वजके एक पौत्रका नाम था धर्मध्वज । उन दिनों धर्मात्मा धर्मध्वज अपनी सौभाग्यवती पत्नी माधवीके साथ गन्धमादन पर्वतपर एक सुन्दर उपवनमें रहते थे । उसी उपवनमें कार्तिक-पूर्णिमा, शुक्रवारको शुभ योग, शुभ क्षण और शुभ लग्नमें देवी माधवीकी कोखसे लक्ष्मीके अंशसे एक अत्यन्त तेजस्विनी एवं अनुपम लावण्यवती श्याम वर्णकी कन्या उत्पन्न हुई । विद्वानोंने उसका नाम 'तुलसी' रखा । सर्वगुणसम्पन्ना तुलसी सबके मना करनेपर भी तपस्या करनेके लिये बदरीवन चली गयी ।

उसकी सहस्रों वर्षकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर हंसारूढ़ जगत्स्रष्टा चतुरानन वहाँ उपस्थित हुए और तुलसीकी कामना जानकर उन्होंने कहा—'जिस प्रकार तुम पूर्वजन्ममें तुलसी नामक गोपी थी और गोलोकमें रासकी अधिष्ठात्री देवी राधाने रासमण्डलमें तुम्हें मानवी होनेका शाप दे दिया था, उसी प्रकार श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट सुदाम नामक गोप भी (जो श्रीकृष्णका साक्षात् अंश है) राधिका-के शापसे दनुजकुलमें उत्पन्न हुआ है । उक्त अनुपम वीर एवं सर्वाङ्गसुन्दर दनुज-शिरोमणिका नाम शङ्खचूड़ है । वह जातिस्मर है । इस जन्ममें श्रीकृष्णका वही अंश तुम्हारा पति होगा । इसके अनन्तर सर्वेश्वर भगवान् नारायण तुम्हारे पति होंगे । वे लीलानायक लीलावश तुम्हें शाप दे देंगे । अतः अपनी कलासे तुम्हें वृक्षरूपसे आर्यधरापर रहना पड़ेगा । तुम सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेमें समर्थ होगी । भगवान् विष्णु तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझेंगे और तुम्हारे बिना उनकी पूजा निष्फल होगी ।'

विधाताने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वरमें फिर कहा—'मैं तुम्हें भगवती राधाके षोडशाक्षर मन्त्रका उपदेश करता हूँ । तुम इसे हृदयमें धारण कर लो । मेरे वरके प्रभाव-से अब राधा तुम्हें प्राणके तुल्य प्रिय मानेंगी और तुम गोविन्दके लिये राधाकी भाँति ही प्रिय बन जाओगी ।'

चतुरानन विदा हुए । कुछ ही दिनोंमें दानवश्रेष्ठ शङ्खचूड़के साथ तुलसीका गान्धर्व-विधिसे विवाह हो गया । उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं । आकाशसे सुमन-वृष्टि होने लगी । विवाहोपरान्त शङ्खचूड़ अपनी साध्वी सहधर्मिणीके साथ सुखपूर्वक रहने लगा ।

शङ्खचूड़ आदर्श शासक था । उसके राज्यमें देवता, दानव, असुर, गन्धर्व, किंनर और राक्षस—सभी सुखी और शान्त थे । किंतु अधिकार-रहित हो जानेके कारण देवगण व्याकुल थे । वे लोकपितामह एवं चन्द्रमौलिके साथ वैकुण्ठ पहुँचे । उनकी प्रार्थना सुनकर श्रीभगवान्ने आशुतोष शिवको अपना त्रिशूल देकर शङ्खचूड़के साथ युद्ध करनेकी आज्ञा दी ।

देवताओं और दानवोंमें भयंकर युद्ध छिड़ा, पर देवता वीरवर श्रीकृष्णभक्त शङ्खचूड़को पराजित नहीं कर सके । भयानक युद्ध होता रहा । भगवान् श्रीविष्णुने निरीह वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें शङ्खचूड़से उसका सर्वमङ्गलमय 'कृष्णकवच' माँग लिया और उसीके रूपमें तुलसीके समीप पहुँचे । उन्होंने उसका व्रतभङ्ग किया (तत्त्वतः तो वह श्रीहरिकी ही प्राणप्रिया पत्नी थी) । उसी समय भगवान् शंकरने श्रीविष्णुप्रदत्त अलौकिक त्रिशूल शङ्खचूड़-पर फेंका । परम वीर, परम बुद्धिमान् एवं परम श्रीकृष्ण-भक्त शङ्खचूड़ने अपना धनुष-बाण फेंक दिया और योगासन लगाकर श्रीकृष्णके ध्यानमें मग्न हो गया । अमोघ त्रिशूल कुछ देर तो चक्कर काटता रहा, फिर वह शङ्ख-चूड़पर जा गिरा और उसी क्षण दानवेन्द्रका पार्थिव शरीर भस्म हो गया । शङ्खचूड़का दिव्य गोप-वेष हो गया । उसकी किशोरावस्था थी । उसके दिव्य एवं अत्यन्त मनोहर शरीरपर रत्नाभरण एवं हाथमें मुरली सुशोभित थी । उसी समय गोलोकसे एक मणिनिर्मित विमान उतरा । वह उसीपर बैठकर गोलोक चला गया । वहाँ

उसने रासमण्डलके मध्य श्रीराधाकृष्णके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ही था कि अपने चिरसेवक सुदामको देखकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने उसे अपनी गोदमें उठा लिया। वह त्रिशूल भी तत्काल भगवान् श्रीकृष्णके पास लौट आया। शङ्खचूड़की हड्डियोंसे शङ्खकी उत्पत्ति हुई। वही शङ्ख अनेक रूपोंमें देव-पूजनमें पवित्र माना जाता है। जहाँपर शङ्ख रहता है, वहीं लक्ष्मी-नारायण निवास करते हैं।

रहस्योद्घाटन होनेपर तुलसीने करुणक्रन्दन करते हुए त्रैलोक्यसुन्दर वनमालाधारी चतुर्भुज विष्णुको शाप दे दिया—'तुम पाषाणहृदय हो। तुमने छलपूर्वक मेरा व्रत-भङ्ग कर मेरे स्वामीको मरवा दिया। अब तुम पाषाण हो जाओ।'

'भद्रे! तुमने पहले मेरे लिये कठोर तप किया है।' करुणासिन्धु भगवान्ने दयामूर्ति तुलसीको समझाते हुए कहा—'उसी समय मेरा ही अंश शङ्खचूड़ तुम्हारे लिये तप कर रहा था। तुम्हें पत्नीके रूपमें प्राप्तकर वह सानन्द गोलोक चला गया। अब मैं तुम्हारी तपस्याका फल तुम्हें देना चाहता हूँ। तुम इस शरीरको त्यागकर लक्ष्मीकी भाँति सदा मेरे साथ रहो। तुम्हारा यह शरीर पुनीत गण्डकी नदीके नामसे प्रसिद्ध होगा। तुम्हारा केशकलाप वृक्ष होगा। तुम्हारे केशसे उत्पन्न होनेके कारण 'तुलसी' नामसे ही उसकी ख्याति होगी। तुलसी-काष्ठकी माला धारणा करने,* तुलसीदलसे मेरा अर्चन† करने एवं तुलसी-दल-मिश्रित जल ग्रहण करनेसे मनुष्य सहज ही संसारसागरसे पार चले जायँगे। मैं उक्त पवित्र गण्डकी-तटपर पाषाणरूपमें रहूँगा। तुम्हारे पत्रसे मेरी पूजा करनेवालेको सभी कुछ करतलगत होगा।'

उसी समय महाभागा विष्णुप्रिया तुलसीकी देहसे पवित्र गण्डकी नदी उत्पन्न हुई और श्रीहरि उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम-शिला बन गये।

× × ×

अमित-महिमामयी तुलसीको साक्षात् श्रीकृष्णने गोमती-तटपर लगाया और बढ़ाया था। पूर्वकालमें वसिष्ठजीके कथनानुसार श्रीरामचन्द्रजीने भी राक्षसोंका वध करनेके उद्देश्यसे पुण्यमूर्ति तुलसीको सरयू-तटपर लगाया था। फिर दण्डकारण्यमें भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने हित-साधनकी इच्छासे तुलसीका वृक्ष लगाया तथा लक्ष्मण और सीताने बड़ी भक्तिके साथ उसे पोसा था। अपने जीवन-सर्वस्व श्रीरामचन्द्रजीसे वियोग हो जानेपर अशोक-वाटिकामें परम सती सीतादेवीने विष्णुप्रिया तुलसीदेवीका ही ध्यान किया था, जिससे उन्हें पुनः प्राणधन श्रीरामकी प्राप्ति हुई। माता पार्वतीने देवाधिदेव महादेवको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये इन्हें हिमालय पर्वतपर लगाया और इनकी सेवा की थी। सम्पूर्ण देवाङ्गनाओं और किंनरोंने भी दुःस्वप्नका नाश करनेके लिये नन्दनवनमें इनका सेवन किया था। धर्मारण्य गयामें साक्षात् पितरोंने तुलसीका सेवन किया। धर्मराजने अपने श्रीमुखसे कहा है—

दारिद्र्यदुःखभोगादिपापानि सुबहून्यपि॥
तुलसी हरते क्षिप्रं रोगानिव हरीतकी।
(प० पु०, पा० खण्ड ९४। ८-९)

'जैसे हर्रे बहुतेरे रोगोंको तत्काल हर लेती है, उसी प्रकार तुलसी दरिद्रता और दुःखभोग आदिसे सम्बन्ध

---

* स्कन्दपुराणमें आता है कि तुलसीकी मालाको पञ्चगव्यसे धोकर मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करे; फिर आठ बार गायत्री-मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् उसे धूपके धूमका स्पर्श कराये और इस सद्योजात-मन्त्रके द्वारा परम भक्तिपूर्वक पूजा करे—

'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः।'

उसके बाद यह प्रार्थना करे—

तुलसीकाष्ठसम्भूते माले कृष्णजनप्रिये।
यथा त्वं वल्लभा विष्णोर्नित्यं विष्णुजनप्रिया।
तथा मां कुरु देवेशि नित्यं विष्णुजनप्रियम्॥
'ला'ऽऽदाने धातुरुद्दिष्टो लासि मां हरिवल्लभे।
भक्तेभ्यश्च समस्तेभ्यस्तेन माला निगद्यसे॥
(श्रीहरिभक्तिविलास ३१४)

'हे माले! तुम तुलसीकाष्ठसे बनी हो। वैष्णवोंको प्रिय हो। मैं तुमको कण्ठमें धारण करता हूँ। तुम मुझको श्रीकृष्णका प्रिय पात्र बना दो। 'मा' शब्दका अर्थ है—मुझको; 'ला' धातुका अर्थ है—ले चलना या मिलाना; हे हरिवल्लभे! तुम मुझको सभी भक्तोंसे मिला देती हो, इसी कारण तुम 'माला' नामसे अभिहित होती हो।'

† श्रीभगवान्को तुलसीदल अर्पित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम्।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम्॥
ॐ तुलसीदलं निवेदयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

रखनेवाले अधिक-से-अधिक पापोंको भी शीघ्र ही दूर कर देती है।'

पार्वतीवल्लभ भगवान् शंकरने अपने पुत्र कार्तिकेयसे तुलसीका माहात्म्य-गान करते हुए कहा था—'सब प्रकारके पत्तों और पुष्पोंकी अपेक्षा तुलसी ही श्रेष्ठ मानी गयी है। वह परम मङ्गलमयी, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, शुद्ध, श्रीविष्णुको अत्यन्त प्रिय, सम्पूर्ण लोकोंमें श्रेष्ठ, शुभ तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। भगवान् श्रीविष्णुने पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये तुलसीका वृक्ष रोपा था। भगवान् विष्णुको तुलसी लक्ष्मीके और मेरे सदृश ही परम प्रिय है। हम तीनके अतिरिक्त कोई चौथा ऐसा नहीं जान पड़ता, जो भगवान्‌को इतना प्रिय हो। तुलसीदलके बिना अन्य पुष्पों एवं चन्दनादिसे भगवान्‌को उतना संतोष नहीं होता। जिसने तुलसीदलके द्वारा पूर्ण श्रद्धाके साथ प्रतिदिन भगवान् विष्णुका पूजन किया है, उसने दान, होम, यज्ञ और व्रत आदि सब पूर्ण कर लिये। तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा कर लेनेपर कान्ति, सुख, भोगसामग्री, यश, लक्ष्मी, श्रेष्ठ कुल, शील, पत्नी, पुत्र, कन्या, धन, राज्य, आरोग्य, ज्ञान-विज्ञान, वेद-वेदाङ्ग, शास्त्र-पुराण, तन्त्र और संहिता—सब कुछ मैं करतलगत समझता हूँ। तुलसीके निकट जो स्तोत्र-मन्त्र आदिका जप किया जाता है, वह सब अनन्तगुना फल देनेवाला होता है।

प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, भूत और दैत्य आदि सब तुलसीके वृक्षसे दूर भागते हैं। ब्रह्महत्यादि पाप, तथा पाप और खोटे विचारसे उत्पन्न होनेवाले रोग—ये सब तुलसी वृक्षके समीप नष्ट हो जाते हैं। जिसने तुलसीकी शाखा तथा कोमल पत्तियोंसे श्रीविष्णुकी पूजा की है, वह कभी माताका दूध नहीं पीता—उसका पुनर्जन्म नहीं होता।'

कर्पूर-गौर शशाङ्क-शेखरने देवर्षि नारदसे तुलसीकी महिमा सुनाते हुए कहा था—

पत्रं पुष्पं फलं मूलं शाखात्वक्स्कन्धसंज्ञितम्।
तुलसीसम्भवं सर्वं पावनं मृत्तिकादिकम्॥
(प० पु०, उ० ख०, २५। २)

'तुलसीके पत्ते, फूल, फल, मूल, शाखा, छाल, तना और मिट्टी आदि सभी पावन हैं।'

त्रैलोक्य-पावन प्रभु शंकरने और कहा—'जिनका मृत शरीर तुलसीकाष्ठकी आगसे जलाया जाता है, वे विष्णुलोकमें जाते हैं। जो मृत पुरुषके सम्पूर्ण अङ्गोंपर तुलसीका काष्ठ रखनेके पश्चात् उसका दाह-संस्कार करता है, वह भी पापसे मुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं—

यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठशतस्य हि।
दाहकाले भवेन्मुक्तिः कोटिपापयुतस्य च॥
(प० पु०, उ० ख० २५। ५-६)

'यदि दाह-संस्कारके समय अन्य लकड़ियोंके भीतर एक भी तुलसीका काष्ठ हो तो करोड़ों पापोंसे युक्त होनेपर भी मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है।'

जो ब्राह्मण तुलसी-काष्ठकी अग्निमें हवन करते हैं, उन्हें एक-एक सिक्थ (भातके दाने) अथवा एक-एक तिलमें अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। इसी प्रकार तुलसी-काष्ठके धूप, तुलसीकी लकड़ीकी आँचसे भगवान्‌के लिये बनाये गये नैवेद्य आदिकी भी बड़ी महिमा है। पितरोंके पिण्डमें तुलसी-दल मिलाकर देनेसे, एक दिनके पिण्डसे पितरोंको सौ वर्षोंतक तृप्ति बनी रहती है। तुलसीकी जड़की मिट्टीसे स्नान करनेसे तीर्थ-स्नानका फल मिलता है। भगवान् शंकर कहते हैं—

पूजने कीर्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ।
तुलसी दहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च॥
उपदेशं ददेदस्याः स्वयमाचरते पुनः।
स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम्॥
(प० पु०, सृ०, ५८। १३१-१३२)

'कलियुगमें तो तुलसीका पूजन, कीर्तन, ध्यान, रोपण और धारण करनेसे ही वह पापको जलाती और स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती है। जो तुलसीके पूजन आदिका दूसरोंको उपदेश देता और स्वयं भी आचरण करता है, वह भगवान् श्रीलक्ष्मीपतिके परम धामको प्राप्त होता है।'

× × ×

अमित-महिमामयी तुलसी देवीका मङ्गलमय प्राकट्य कार्तिककी पूर्णिमा तिथिको हुआ और सर्वप्रथम भगवान् श्रीहरिने उनकी पूजा सम्पन्न की। श्रीहरिके द्वारा विश्वपावनी तुलसी-पूजाकी अत्यन्त संक्षिप्त कथा और उनके द्वारा किया गया सुप्रसिद्ध मङ्गलमय स्तोत्र इस प्रकार है—

प्रेममूर्ति श्रीहरिने तुलसीको गौरव प्रदानकर उन्हें भी लक्ष्मीके तुल्य सौभाग्यवती बना दिया। भगवती लक्ष्मी और पतितपावनी गङ्गा तो तुलसीके नवसंगम और सौभाग्यको

सहन करती रहीं, किंतु सरस्वती क्षुब्ध हो गयीं। उन्हें तुलसीका यह सौभाग्य सह्य नहीं हुआ। सरस्वतीके द्वारा अपमानका अनुभव कर तुलसी अन्तर्धान हो गयीं। सिद्धिस्वरूपा तुलसी श्रीहरिके नेत्रोंसे अदृश्य हो गयीं। उन्हें न देखकर श्रीहरि व्याकुल हो गये। उन्होंने सरस्वतीको समझाया और विरहातुर हो तुरंत वृन्दावनके लिये प्रस्थित हुए। वहाँ उन्होंने 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा' इस मन्त्रराजका उच्चारण करते हुए चन्दन, सिन्दूर, पुष्प, धूप, घृत-दीप एवं नैवेद्य आदि उपचारोंसे प्रीतिपूर्वक उनकी पूजा की।

नारायण उवाच

अन्तर्हितायां तस्यां च हरिर्वृन्दावने तदा।
तस्याश्चक्रे स्तुतिं गत्वा तुलसीं विरहातुरः॥

नारायण ऋषि कहते हैं—'तुलसीके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान् श्रीहरि विरहसे आतुर होकर वृन्दावन चले गये थे और वहाँ जाकर उन्होंने तुलसीकी इस प्रकार स्तुति की थी।'

श्रीभगवानुवाच

पुरा बभूव या देवी ह्यादौ वृन्दावने वने।
तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम्॥
असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्।
तेन विश्वपूजिताख्या पूजितां च भजाम्यहम्॥
असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि त्वया सदा।
तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना।
तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥
विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम्।
नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवतादिह॥
यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च।
तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥
कृष्णजीवनरूपा सा शश्वत्प्रियतमा सती।
तेन कृष्णजीवनी सा सा मे रक्षतु जीवनम्॥

(देवीभागवत ९। २५। १७–२५)

श्रीभगवान् बोले—'जो देवी प्राचीनकालमें वृन्दावनमें प्रकट हुई थी, अतएव जिसे 'वृन्दावनी' कहते हैं, उस सौभाग्यवती देवीकी मैं उपासना करता हूँ। जो असंख्य विश्वोंमें निरन्तर पूजा प्राप्त करती है, अतः जिसका नाम 'विश्वपूजिता' पड़ा है, उस देवीकी मैं उपासना करता हूँ। देवी! तुमने अनन्त विश्वको पवित्र किया है, ऐसी तुम 'विश्वपावनी' देवीकी मैं विरहसे आतुर होकर उपासना करता हूँ। जिसके बिना प्रचुर पुष्प अर्पण करनेपर भी देवता प्रसन्न नहीं होते, ऐसी पुष्पसारा—पुष्पोंकी सारभूता शुद्धस्वरूपिणी तुलसी देवीका शोकसे व्याकुल होकर मैं दर्शन करना चाहता हूँ। संसारमें जिसकी प्राप्तिमात्रसे भक्तको परम आनन्दकी उपलब्धि होती है, इसलिये 'नन्दिनी' नामसे जिसकी प्रसिद्धि है, वह भगवती तुलसी अब मुझपर प्रसन्न हो जाय। अखिल विश्वमें जिस देवीकी तुलना नहीं की जा सकती, अतएव जो 'तुलसी' कहलाती है, उस अपनी प्रियाकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। वह साध्वी तुलसी भगवान् श्रीकृष्णकी नित्य प्रियतमा—नहीं, नहीं, जीवनस्वरूपा होनेसे 'कृष्णजीवनी' नामसे विख्यात है, वह मेरे जीवनकी रक्षा करे।'

श्रीहरिके इस प्रेमपूरित स्तवनसे तुलसीदेवी वहीं प्रकट हो गयीं; वे अपने प्राणवल्लभ लक्ष्मीकान्त श्रीहरिके चरणोंपर गिर पड़ीं। श्रीहरिके द्वारा अत्यधिक सम्मान प्राप्त होनेसे मानिनी तुलसीके नेत्रोंमें अश्रु भरे थे। त्रैलोक्यवन्द्य दयामूर्ति श्रीहरिने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर उन्हें सर्वपूज्या एवं सबके लिये शिरोधार्या होनेका वर प्रदान किया। जब सरस्वतीकी आज्ञासे कमलनयन श्रीहरि तुलसीको अपने साथ ले गये तब सरस्वती, लक्ष्मी और गङ्गाने उनका सादर अभिनन्दन किया और उन्हें अत्यन्त सम्मान एवं प्रीतिसे अपने साथ लेकर वे भवनमें प्रविष्ट हुईं।

× × ×

रासरासेश्वरी श्रीराधाजीने भी विश्वपूजिता तुलसीकी पूजा की थी। वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

'राधे!' एक दिन श्रीराधारानीकी प्रिय सखी चन्द्राननाने उनसे कहा—'अत्यन्त सौभाग्यप्रद, अतिशय पुण्यमय एवं श्रीकृष्णकी प्राप्तिका वर देनेवाला पवित्र व्रत है—'तुलसी-पूजन।' फिर तुलसीका माहात्म्य बताते हुए चन्द्राननाने कहा—

यदि स्पृष्टाथवा ध्याता कीर्तिता नामभिः स्तुता।
रोपिता सिञ्चिता नित्यं पूजिता तुलसीदलैः॥
नवधा तुलसीभक्तिं ये कुर्वन्ति दिने दिने।
युगकोटिसहस्राणि ते यान्ति सुकृतं शुभे॥

यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैः शुभैः ।
रोपिता तुलसी मर्त्यैर्वर्धते वसुधातले ॥
तेषां वंशेषु ये जाता गतास्ते वै सुरालये ।
आकल्पयुगसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे ॥
यत्फलं सर्वपत्रेषु सर्वपुष्पेषु राधिके ।
तुलसीदलेन चैकेन सर्वदा प्राप्यते तु तत् ॥
तुलसीप्रभवैः पत्रैर्यो नरः पूजयेद्धरिम् ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥
सुवर्णभारशतकं रजतं यच्चतुर्गुणम् ।
तत्फलं समवाप्नोति तुलसीवनपालनात् ॥
तुलसीकाननं राधे गृहे यस्यावतिष्ठति ।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि न यान्ति यमकिंकराः ॥
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् ।
रोपयन्ति नराः श्रेष्ठास्ते न पश्यन्ति भास्करिम् ॥
रोपणात् पालनात् सेकाद् दर्शनात् स्पर्शनान्नृणाम् ।
तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसंचितम् ॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
वासुदेवादयो देवा वसन्ति तुलसीदले ॥
तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान् विमुञ्चति ।
यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥
तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः ।
तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥
तुलसीविपिनच्छाया यत्र यत्र भवेच्छुभे ।
तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥
तुलस्याः सखि माहात्म्यमादिदेवश्चतुर्मुखः ।
न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥
तुलसीसेवनं नित्यं कुरु त्वं गोपकन्यके ।
श्रीकृष्णो वश्यतां याति येन वा सर्वदैव हि ॥
(गर्ग०, वृन्दावन० १६ । ३—१८)

‘तुलसीका यदि स्पर्श अथवा ध्यान, नाम-कीर्तन, स्तवन, रोपण, सेवन और तुलसीदलोंसे ही नित्य पूजन किया जाय तो वह महान् पुण्यप्रद होता है । शुभे ! जो प्रतिदिन तुलसीकी नौ प्रकारसे भक्ति करते हैं, वे सहस्र कोटि युगोंतक अपने उस सुकृतका उत्तम फल भोगते हैं । मनुष्योंकी लगायी हुई तुलसी जबतक शाखा-प्रशाखा, बीज, पुष्प और सुन्दर दलोंके साथ पृथ्वीपर बढ़ती रहती है, तबतक उनके वंशमें जो-जो जन्म लेते हैं, वे सब उन आरोपण करनेवाले मनुष्योंके साथ दो हजार कल्पोंतक श्रीहरिके धाममें निवास करते हैं । राधिके ! सब प्रकारके पत्रों और पुष्पोंको भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ानेसे जो फल मिलता है, वह सदा एकमात्र तुलसीदलके अर्पणसे प्राप्त हो जाता है । जो मनुष्य तुलसीदलोंसे श्रीहरिकी पूजा करता है, वह जलमें पद्मपत्रकी भाँति पापसे कभी लिप्त नहीं होता । सौ भार सुवर्ण तथा चार सौ भार रजतके दानका जो फल है, वही तुलसी-वनके पालनसे मनुष्यको प्राप्त हो जाता है । राधे ! जिसके घरमें तुलसीका वन या बगीचा होता है, उसका वह घर तीर्थ-रूप है, वहाँ यमराजके दूत कभी नहीं जाते । जो श्रेष्ठ मानव सर्वपापहारी, पुण्यजनक तथा मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले तुलसीवनका रोपण करते हैं, वे कभी सूर्यपुत्र यमको नहीं देखते । रोपण, पालन, सेचन, दर्शन और स्पर्श करनेसे तुलसी मनुष्योंके मन, वाणी और शरीरद्वारा संचित समस्त पापोंको दग्ध कर देती है । पुष्कर आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदियाँ तथा वासुदेव आदि देवता तुलसीदलमें सदा निवास करते हैं । जो तुलसीकी मञ्जरी सिरपर रखकर प्राण-त्याग करता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त क्यों न हो, यमराज उसकी ओर देख भी नहीं सकते । जो मनुष्य तुलसीकाष्ठका घिसा हुआ चन्दन लगाता है, उसके शरीरको यहाँ क्रियमाण पाप भी नहीं छूता । शुभे ! जहाँ-जहाँ तुलसीवनकी छाया हो, वहाँ-वहाँ पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये । वहाँ दिया हुआ श्राद्धसम्बन्धी दान अक्षय होता है । सखी ! आदिदेव चतुर्मुख ब्रह्माजी भी शार्ङ्गधन्वा श्रीहरिके माहात्म्यकी भाँति तुलसीके माहात्म्यको भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं । अतः गोपनन्दिनि ! तुम भी प्रतिदिन तुलसीका सेवन करो, जिससे श्रीकृष्ण सदा ही तुम्हारे वशमें रहें ।’

प्रिय सखी चन्द्राननाके मुखसे तुलसीका अद्भुत माहात्म्य सुनकर श्रीराधाने केतकीवनमें सौ हाथ वृत्ताकार भूमिपर गगनचुम्बी अत्यन्त सुन्दर मन्दिर निर्माण कराया । मन्दिरकी दीवार सुवर्णमय थी । उक्त विशाल मन्दिरके परकोटे आदिमें सर्वत्र ही हीरे, मोती, पन्ने तथा पद्मरागादि बहुमूल्य मणियाँ जड़ी हुई थीं । उक्त अत्यन्त दिव्य एवं सुन्दर मन्दिरमें त्रैलोक्यपावन श्यामसुन्दरको संतुष्ट करनेके लिये उन्होंने तुलसीकी स्थापना की । उन्होंने आश्विन पूर्णिमासे लेकर चैत्र पूर्णिमातक तुलसी-सेवन-व्रतका संकल्प कर अभिजित् मुहूर्तमें उनकी सेवा आरम्भ की ।

अत्यन्त श्रद्धा एवं प्रीतिसे व्रतारम्भ कर सती श्रीराधाने कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन और चैत्र मासमें क्रमशः

दूध, ईखके रस, द्राक्षारस, बारहमासी आमके रस, अनेक वस्तुओंसे मिश्रित मिश्रीके रस और पञ्चामृतसे सींचा। इस प्रकार व्रत सम्पन्न होनेपर उन्होंने वैशाख कृष्ण प्रतिपदाके दिन उद्यापनका महोत्सव किया। लाखों ब्राह्मणोंको सती राधाने विविध प्रकारके दुर्लभ पदार्थोंके भोजन और वस्त्राभूषणोंकी दक्षिणासे तृप्त किया। महादेवी श्रीराधाने दिव्य मोतियोंका एक लाख भार तथा सुवर्णका एक कोटि भार श्रीगर्गाचार्यजीको प्रदान किया। उस समय शून्यमें देवदुन्दुभियाँ बज उठीं, परम सुन्दरी अप्सराएँ नृत्य करने लगीं और तुलसी-मन्दिरपर सुर-समुदाय दिव्य सुमनोंकी वृष्टि करने लगा।

उसी समय वहाँ श्यामसुन्दरी श्रीहरिप्रिया तुलसीदेवी प्रकट हो गयीं। वे सुवर्णके सिंहासनपर आसीन थीं। उनके चार भुजाएँ तथा विकसित कमलदल-सरीखे विशाल नेत्र थे। उनके मस्तकपर अद्भुत सुवर्णमय किरीट तथा कानोंमें दिव्य कुण्डल झलमला रहे थे। उनके शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था तथा उनकी वेणीमें वैजयन्ती-माला गुँथी हुई थी। श्रीतुलसीदेवी गरुड़से उतरीं और उन्होंने तुरंत आह्लादपूर्वक श्रीराधाको अपने अङ्कमें भर लिया।

'कुमारी राधे!' श्रीतुलसीदेवीने अत्यन्त संतुष्ट होकर कहा—'मैं तुम्हारी भक्तिसे सदा संतुष्ट एवं पूर्ण प्रसन्न हूँ। पूर्णकाम होकर भी तुमने लोकसंग्रहकी भावनासे इस व्रतका अनुष्ठान किया है, अतएव तुम्हारी प्रत्येक कामना पूरी होगी। तुम्हारे पति सदा तुम्हारे अनुकूल रहेंगे और तुम्हारा सौभाग्य कीर्तनीय बना रहेगा।'

'देवि!' श्रीराधाने अत्यन्त विनम्र वाणीमें श्रीतुलसीसे निवेदन किया—'श्रीकृष्णके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।'

'तथास्तु!' अत्यन्त मुदित मनसे श्रीतुलसीने कहा और वे अन्तर्धान हो गयीं।

× × ×

तुलसीका नामोच्चारण करनेसे ही असुरारि भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं, मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। कलियुगमें वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके घरमें शालग्राम-शिलाका पूजन करनेके लिये प्रतिदिन तुलसीका वृक्ष लहलहाता रहता है। तुलसी काले रंगके पत्तोंवाली हो या हरे रंगके,* उसके द्वारा मधुसूदनकी पूजा करनेसे प्रत्येक मनुष्य, विशेषतः भगवान्का भक्त नरसे नारायण हो जाता है। बासी तुलसी भी श्रीभगवान्की पूजाके काम आ जाती है—

वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम्।
न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम्॥
(स्क० पु०, वै० मा० मा० ८। ९)

'पूजामें बासी पुष्प और बासी जल वर्जित हैं, परंतु बासी होनेपर भी तुलसीदल और गङ्गाजल वर्जित नहीं हैं।'

देवकार्य और पितृकार्यके लिये स्नान करके ही तुलसीकी पत्तियाँ उतारनी चाहिये—

अस्नात्वा तुलसीं छित्वा यः पूजां कुरुते नरः।
सोऽपराधी भवेत् सत्यं तत् सर्वं निष्फलं भवेत्॥
(वायुपुराण)

'बिना स्नान किये जो तुलसी-चयन करके उससे पूजा करता है, निश्चय ही वह अपराधी है और उसकी सारी पूजा निष्फल होती है।'

तुलसीदल चयन करते समय निम्नाङ्कित श्लोकका पाठ करना मङ्गलकर होता है—

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये।
केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने।
त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम्॥
तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि।
(प० पु० वें० प्रे० संस्करण, सृ० ६३। ११-१३)

'तुलसी! तुम अमृतसे उत्पन्न हो और केशवको सदा ही प्रिय हो। कल्याणी! मैं भगवान्की पूजाके लिये तुम्हारे पत्तोंको चुनता हूँ। तुम मेरे लिये वरदायिनी बनो। तुम्हारे श्रीअङ्गोंसे उत्पन्न होनेवाले पत्रों और मञ्जरियोंद्वारा मैं सदा ही श्रीहरिका पूजन कर सकूँ, ऐसा उपाय करो। पवित्राङ्गी तुलसी! तुम कलिमलका नाश करनेवाली हो।'

श्रद्धा और भक्ति—श्रीविष्णुप्रिया तुलसीकी तुष्टिके लिये आवश्यक है। पूजाके पूर्व स्नानादिसे निवृत्त होकर

---

* तुलसी कृष्णगौराभा तयाभ्यर्च्य जनार्दनम्।
नरो याति तनुं त्यक्त्वा वैष्णवीं शाश्वतीं गतिम्॥
(पद्मपुराण)

'तुलसी श्यामवर्णकी हो या गौरवर्णकी, उसके द्वारा जनार्दनकी अभ्यर्चना करनेपर मनुष्य शरीर-त्याग करनेके पश्चात् शाश्वत विष्णुलोकको प्राप्त होता है।'

तुलसीके समीप बैठकर हाथ जोड़े और उनका मङ्गलमय ध्यान करे। ध्यानमें सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेकी अबाध शक्ति है। ध्यान करनेके पश्चात् बिना आवाहन किये तुलसीके वृक्षमें पाद्यादि षोडशोपचारसे भक्तिपूर्वक इस देवीकी पूजा करनी चाहिये। पूजोपरान्त 'नामाष्टक' का पाठ करे; यह स्तोत्ररूपी नामाष्टक अत्यन्त पुण्यप्रद है—

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी॥
एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्।
यः पठेत्तां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥
(देवीभा० ९। २५। ३२-३३)

'वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी और कृष्णजीवनी—ये देवी तुलसीके आठ नाम हैं। यह सार्थक नामावली स्तोत्रके रूपमें परिणत है। जो पुरुष तुलसीकी पूजा करके इस 'नामाष्टक' का पाठ करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है।'

इसके अनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रणाम करे—

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥
(प० पु०, पा० ७९। ६६)

'जो दर्शन-पथमें आनेपर सारे पाप-समुदायका नाश कर देती है, स्पर्श किये जानेपर शरीरको पवित्र बनाती है, प्रणाम किये जानेपर रोगोंका निवारण करती है, जलसे सींचे जानेपर यमराजको भी भय पहुँचाती है, आरोपित किये जानेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती है और भगवान्के चरणोंमें चढ़ाये जानेपर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसीदेवीको नमस्कार है।'

× × ×

पद्मपुराणमें कार्तिक शुक्ल नवमीको तुलसीके विवाहका उल्लेख किया गया है। उस दिनसे व्रती नियम ग्रहण करे। त्रिरात्र व्रत करनेके उद्देश्यसे स्नानादिसे शुद्ध हो मनको संयममें रखते हुए प्रतिदिन रात्रिमें तुलसीवन (अथवा तुलसी-तरु) के समीप श्रीभगवान्का स्मरण करते हुए शयन करे। मध्याह्न वेलामें नदी आदिमें स्नान करके सविधि देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। व्रतारम्भमें ग्रह-शान्ति कराये, उसके बाद चरु पकाकर उसके द्वारा श्रीविष्णुभगवान्की प्रीतिके लिये हवन करे। द्वादशीके दिन श्रीभगवान्की पूजाके अनन्तर पञ्चरत्न, पञ्चपल्लव एवं ओषधियोंसहित शुद्ध एवं अखण्ड (जो टूटा-फूटा न हो) कलशकी स्थापना कर उसके ऊपर एक पात्र रखे और उसके भीतर लक्ष्मीजीके साथ भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको विराजमान करे। फिर वैदिक और पौराणिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए तुलसीवृक्षके मूलमें भगवत्प्रतिमा-की स्थापना करे। तुलसीवाटिकाको जलसे सींचे। फिर जगद्गुरु श्रीभगवान्को पञ्चामृतसे स्नान कराकर उनसे प्रार्थना करे। इसके अनन्तर उनका आवाहन करके श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजनकर अज्ञानान्धकारका विनाश करनेवाले श्रीभगवान्की स्तुति करनी चाहिये।

उस दिन रात्रिमें जागरण, गान, स्वाध्याय एवं श्रीभगवान्का भजन, स्मरण, चिन्तन एवं मनन करते रहना चाहिये। प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होकर ब्राह्मणों-को निमन्त्रित करके भक्तिपूर्वक वैष्णव श्राद्ध करना चाहिये। इसके अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन, ताम्बूल एवं दक्षिणासे संतुष्टकर भगवत्कृपा-प्राप्तिकी कामनासे उनके चरणोंमें प्रणाम करे। श्रीलक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा भी सम्पूर्ण पूजन-सामग्रियोंसहित आचार्यको दे देनी चाहिये।

'व्रतराज' में उल्लेख है कि 'नवमीसे तीन रात्रियाँ ग्रहण करनी चाहिये। धात्री और अश्वत्थको एक जगह पालकर उनका आपसमें विवाह कराये।' व्रत-माहात्म्यमें बताया गया है कि इस तुलसी-व्रतके प्रभावसे प्राचीन कालमें काञ्चीपुरीके कनक नामक वैष्णव क्षत्रियकी अनिन्द्यसुन्दरी कन्या किशोरीका वैधव्य दूर हो गया। अन्य ग्रन्थोंके अनुसार प्रबोधिनीसे पूर्णिमा-पर्यन्त पाँच दिनका व्रत करना चाहिये।

द्वादशी,† रविवारके दिन तुलसी तोड़ना निषिद्ध है।
(आह्निकसूत्रावलि)

'विष्णुको चावल, गणेशको तुलसी, दुर्गाको दूर्वा और सूर्यनारायणको बिल्वपत्र न चढ़ाये। किंतु डंडी तोड़कर बिल्वपत्र सूर्यनारायणको चढ़ा सकते हैं।'

× × ×

पण्डित श्रीगणपतिलालजी त्रिपाठीकी लिखी हुई एक घटना पहले 'कल्याण' में प्रकाशित हुई थी। इस आधुनिककालीन घटनासे श्रीतुलसीजीकी महिमा स्वयं विदित हो जाती है। वह घटना अविकलरूपसे इस प्रकार है—

---

† द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं च कार्तिके।
लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान्॥

'द्वादशीको तुलसीदल और कार्तिक मासमें आमलकीपत्र जो मनुष्य तोड़ता है, वह (मरनेके बाद) अतिगर्हित नरकोंमें जाता है।'

विजयनगर अजमेरसे पाँचवाँ रेलवे स्टेशन है। इस विजयनगरमें पं० श्रीलालजी 'श्रीकालिकादेवी' मन्दिरके पुजारी हैं। इनकी मामीजीका स्वर्गवास हुआ तो उनके दाह-संस्कारमें इनके एक जयपुरनिवासी मेहमानने बातों-ही-बातोंमें अभी कुछ दिनों पहलेकी एक प्रत्यक्ष आश्चर्यजनक घटना सुनायी। उन्होंने बताया कि हमारे यहाँ एक शरिश्तेदार (सरकारी मुलाजिम) जातिके मुसल्मान हैं। उनके घर एक नाई बाल बनाने आता था। वह नाई संसारसे चल बसा, किंतु सालभर बाद शरिश्तेदार साहबको वह नाई दिखायी दिया। तब उन्होंने उससे पूछा—'तुम तो चल बसे थे जी ?' उस मृतक प्राणीने कहा—'हाँ, मैं मर गया था। पर मरनेके बाद मुझे यमदूतका काम मिल गया। मैं अब यमदूतके रूपमें संसारमें फिरता हूँ; किंतु आप मेरे पूरे मेहरबान हैं, इसलिये आपसे पुनः मिलने आ गया। कल आपके गाँवके बाहर माताजीके स्थानपर एक बालकको बैल सींगसे मारेगा। उसकी मृत्यु हो जायगी। तब मैं उसे ले जाऊँगा।' इतना कहकर वह अदृश्य हो गया। फिर इस बातकी जाँचके लिये शरिश्तेदार साहबने एक दिनकी छुट्टी ले ली और दूसरे दिन जलका लोटा लेकर निपटनेके बहाने वे गाँवके बाहर जा निकले। जहाँ भगवतीका स्थान था, वहाँपर बाहरसे कुछ यात्री आये हुए थे। उन्होंने एक बालकका मुण्डन-संस्कार किया। फिर स्नान कराकर कपड़े पहनाकर उस पञ्चवर्षीय बालकको गेंद खेलनेके लिये दी। खेलते समय बैलगाड़ीके पास वह गेंद चली गयी। बच्चा उसे लेने गया, तब बैलने सींगसे उठाकर पाँच-सात फुट दूर फेंक दिया। गिरते ही बच्चेका प्राणान्त हो गया। कोलाहल मच गया। रोना-पीटना शुरू हो गया। शरिश्तेदार साहब यह सब देखकर वहाँसे रवाना हो गये। रास्तेमें वह नाई मिला। उसने कहा—'साहब ! मुझे निराश लौटना पड़ रहा है। कारण कि जिस जगह वह बालक गिरा, उस जगह 'तुलसी-पत्र' थे। उनके स्पर्शसे विष्णुदूत आ गये और उस आत्माको मुझसे छुड़ाकर ले गये।'' इतना कहकर वह नाई अदृश्य हो गया। इसके बाद उन मुसल्मान शरिश्तेदार साहबने तुलसीका महत्त्व समझकर अपने घरपर तुलसीका पौधा लगाया। फिर वे एक वर्ष जीवित रहे। अब आजके पाँच दिन पहले वे भी परमेश्वरके द्वार पहुँच गये। आज विजयनगर आया तो मुझे श्मशान देखना पड़ा।

जगदुद्धारिणी माता श्रीतुलसीके पदपद्मोंमें अनन्त प्रणाम !

श्रीमार्कण्डेयकृत मृत्युनिवारक श्रीविष्णु-स्तोत्र

दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
शङ्खचक्रधरं देवं व्यक्तरूपिणमव्ययम्। अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम्। माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
पुरुषं पुष्करक्षेत्रं बीजं पुण्यं जगत्पतिम्। लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्। महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोनिमयोनिजम्। विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ॥

(गरुडपुराण २२५। १—६)

मैं दामोदर भगवान् विष्णुके शरणागत हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर लेगी। जो भगवान् विष्णु शङ्ख-चक्र धारण करते हैं, जो साकाररूपमें प्रकट हैं, जो अविनाशी हैं, जो निर्विकार हैं, जिनकी प्राप्तिके लिये इन्द्रिय-ज्ञान असमर्थ हैं; मैं उनके शरणागत हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर लेगी। मैं भगवान् वराह, वामन, लक्ष्मीपति विष्णु, नरसिंह, जनार्दनके शरणापन्न हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर लेगी। जो पुष्करक्षेत्रस्वरूप हैं, जो जगत्के बीज हैं; पुण्यरूप हैं, जगदीश्वर हैं, मैं उन लोकनाथ भगवान् विष्णुकी शरणमें हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर लेगी। जो सहस्रों सिरवाले देव विश्वरूपमें प्रत्यक्ष तथा ब्रह्मरूपमें अव्यक्त और सनातन हैं, मैं उन परमयोगेश्वरके शरणागत हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर लेगी। जो समस्त प्राणी-पदार्थोंमें परमात्माके रूपमें अभिव्यक्त हैं, जो यज्ञोंके मूल कारण हैं, जो अयोनिज—अज अथवा स्वयम्भू हैं, मैं उन विश्वरूप विष्णुके शरणागत हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर लेगी।

एकादशी-माहात्म्य और व्रत-विधि

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः ।
नास्ति विष्णुसमं दैवं तपो नानशनात्परम् ॥
नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसमं धनम् ।
नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसमः पिता ॥
न विवेकसमो बन्धुर्नैकादश्याः परं व्रतम् ।
(ना० पूर्व० २३ । ३०—३२)

'गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है । माताके समान कोई गुरु नहीं है । भगवान् विष्णुके समान कोई देवता नहीं है और उपवाससे बढ़कर कोई तप नहीं है । क्षमाके समान कोई माता नहीं है । कीर्तिके समान कोई धन नहीं है । ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं है । धर्मके समान कोई पिता नहीं है । विवेकके समान कोई बन्धु नहीं है और एकादशीसे बढ़कर कोई व्रत नहीं है ।'—श्रीसनक

प्राचीन कालकी बात है, शम (मनोनिग्रह) और दम (इन्द्रियसंयम)से सम्पन्न, सत्यपरायण एवं तपस्वी महामुनि गालव नर्मदाके पावन तटपर निवास करते थे । वहाँ कंद, मूल, फल, पुष्प एवं समिधा सरलतासे मिल जाते थे; विप्रवर गालवके साथ त्यागमूर्ति तपस्वी मुनियोंका बृहत् समुदाय भी रहता था । उस तपःस्थलमें तमोगुणका प्रवेश भी सम्भव नहीं था ।

मुनिवर गालवके एक जातिस्मर सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ । उसका नाम था भद्रशील । भद्रशीलकी जब खेलनेकी अवस्था हुई, तब वह बालकोंके मध्य बैठकर श्रीविष्णुकी मिट्टीकी प्रतिमा बना उसकी बड़ी ही प्रीतिसे पूजा करता था । वह अपने साथ रहनेवाले बालकोंसे प्रेमपूर्वक कहता—'पृथ्वीपर जन्म लेकर मनुष्यको क्षीराब्धिशायी श्रीविष्णुकी पूजा अवश्य करनी चाहिये और विद्वानोंको एकादशी-व्रतका भी पालन करना चाहिये ।'

भद्रशीलके सदुपदेशसे प्रभावित होकर उसके मित्र बालक भी लक्ष्मीपति श्रीविष्णुकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर उसकी पुष्पादिसे पूजा करते । इस प्रकार वे भाग्यवान् बालक भद्रशील-के सङ्गसे श्रीभगवान्‌के स्मरण-चिन्तनमें लग गये । भद्रशील नवजलधरश्याम शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीविष्णुके चरणोंमें मन-ही-मन प्रणाम करके विश्व-कल्याणकी कामना करता । खेलते समय वह बीच-बीचमें घड़ी-दो-घड़ी विश्व-विमोहन प्रभुके ध्यानमें तल्लीन हो जाता और एकादशी-व्रतका संकल्प करके करुणामूर्ति प्रभुको समर्पित कर देता ।

'बेटा भद्रशील !' अपने शिशुके अलौकिक आचरण देखकर अत्यन्त आश्चर्यसे एक दिन महामुनि गालवने उससे पूछा—'दुर्लभ सत्सङ्गकी प्राप्ति होनेपर भी पूर्व पुण्यकी अधिकतासे ही मनुष्योंमें भगवद्भक्तिका उदय होता है; किंतु तुम्हारी विष्णुभक्ति, एकादशी-व्रतकी निष्ठा एवं सम्पूर्ण सृष्टिके प्रति सद्भावना देखकर मैं विस्मित हो रहा हूँ । तुम्हें इस प्रकारकी परम पावनी एवं मङ्गलमयी बुद्धि किस प्रकार प्राप्त हो गयी, मेरी यह जाननेकी इच्छा है ।'

'पिताजी ! जातिस्मर होनेके कारण मुझे पूर्वजन्मका स्मरण है ।' अत्यन्त विनयपूर्वक बालक भद्रशीलने अपने पिता मुनिवर गालवको बताया । ''पूर्वजन्ममें मैं श्रीदत्तात्रेयजी-द्वारा दीक्षित चन्द्रवंशोत्पन्न धर्मकीर्ति नामक नरेश था । नौ सहस्र वर्षतक शासन एवं पुण्यकर्म करनेपर भी मैंने कुसङ्गमें पड़कर पवित्रतम एवं मङ्गलमय वैदिक मार्गको त्याग दिया और यज्ञोंका विध्वंस किया । मेरा अनुकरण कर प्रजा भी पापकर्ममें प्रवृत्त हो गयी । पापाचार-परायण एवं दुर्व्यसनोंमें आसक्त मैं एक बार आखेटके लिये अरण्यमें प्रविष्ट हुआ । प्रचण्ड गर्मी थी । मेरे सैनिक दूर छूट गये और मैं क्षुधा एवं तृषासे व्याकुल होकर पुण्यतोया नर्मदाके तटपर पहुँचा । मैंने नर्मदामें स्नान किया । क्षुधासे मैं कष्ट पा रहा था; पर दिनमणि अस्ताचल सिधारे और मैं वहीं रह गया । उसी समय एकादशी-व्रत करनेवाले नर्मदा-तट-निवासी वहाँ पहुँचे । मैंने भी उनके साथ भगवन्नाम-कीर्तन सुनते हुए रात्रि-जागरण किया । जागरण समाप्त होते ही मेरी मृत्यु हो गयी ।

भयानक यमदूत मुझे अकथनीय कष्टकर मार्गसे यमराजके समीप ले गये । वहाँ मेरे कर्मोंके सम्बन्धमें पूछनेपर चित्रगुप्तने उत्तर दिया—'यद्यपि इसने जीवनमें अत्यधिक पापाचरण किया है, किंतु पवित्र एकादशीके दिन नर्मदाके तटपर निराहार रहकर जागरण करते हुए श्रीभगवन्नाम-कीर्तन सुननेसे इसके सारे पाप ध्वंस हो गये हैं ।'

मैं चकित था । काँपते हुए यमराजने मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपने दूतोंसे कहा—'दूतो ! जो भगवान् विष्णुकी पूजामें तत्पर, संयमी, कृतज्ञ, एकादशी-व्रत-परायण,

जितेन्द्रिय, विश्वहितैषी हैं एवं जो नारायण, अच्युत, जनार्दन, कृष्ण, विष्णु, कमलाकान्त, शिव, शंकर इत्यादि नामोंका नित्य कीर्तन किया करते हैं, उन्हें दूरसे ही त्याग दिया करो। उनपर मेरा शासन नहीं चलता।'

यमराजकी बातें सुनकर मैं अपने निन्दित कर्मोंके लिये पश्चात्ताप करने लगा। पापकर्मके पश्चात्ताप एवं श्रेष्ठ धर्मका श्रवण करनेसे मेरे सारे पाप वहीं नष्ट हो गये। उसके बाद मैं पुण्यकर्मोंके प्रभावसे इन्द्रलोकमें पहुँचा। वहाँ देवता भी मेरा सम्मान करते थे। दीर्घकालतक सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करनेके अनन्तर मैंने इस पृथ्वीपर जन्म लिया है। पहले विवशतापूर्वक व्रत करनेसे मुझे जब वैसा फल प्राप्त हुआ, तब भक्तिपूर्वक एकादशी-व्रत करनेपर क्या दुर्लभ हो सकता है। अब मैं एकादशी-व्रतका पालन तथा प्रतिदिन श्रीविष्णुकी पूजा करूँगा। इस नश्वर जीवनमें भगवत्प्राप्ति ही मेरी परमाकाङ्क्षा है।''

'बेटा! मेरा जन्म सफल एवं मेरा वंश पवित्र हो गया।' अपने जातिस्मर भक्त पुत्र भद्रशीलकी बातोंसे अत्यन्त प्रसन्न होकर मुनिवर गालवने कहा—'क्योंकि तुम्हारे-जैसे विष्णुभक्त पुरुषने मेरे घरमें जन्म लिया है।'

इतना कहकर विप्रवर गालवने अपने प्राणप्रिय पुत्र भद्रशीलको श्रीभगवान्‌की पूजाकी विस्तृत विधि समझा दी।

× × ×

एकादशी-व्रतकी बड़ी महिमा है। यह व्रत भुक्ति-मुक्ति तथा सर्वाभीष्ट प्रदान करनेवाला है। पद्मपुराणके वचन हैं—

वर्णानामाश्रमाणां च स्त्रीणां च वरवर्णिनि।
एकादश्युपवासस्तु कर्तव्यो नात्र संशयः॥

'ब्राह्मणादि चारों वर्णों, ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों और स्त्रीजातिके लिये भी एकादशीका उपवास अवश्य कर्तव्य है।'

एकादश्युपवासं यः सदा तु कुरुते नरः।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्थितः॥
(अग्निपुराण)

'जो मनुष्य सदा एकादशीका उपवास करता है, वह (मरनेपर) उस परमधामको जाता है, जहाँ श्रीहरि नित्य निवास करते हैं।'

सर्वसमर्थ, सर्वान्तर्यामी श्रीविष्णुको प्रसन्न करनेके लिये यह एकादशी-व्रत अनिवार्य बतलाया गया है—

वैष्णवो यदि भुञ्जीत एकादश्यां प्रमादतः।
विष्णवर्चनं वृथा तस्य नरकं घोरमाप्नुयात्॥
(गौतमीतन्त्र)

'यदि वैष्णव प्रमादवश एकादशीको भोजन करता है तो उसकी विष्णुपूजा व्यर्थ जाती है और वह घोर नरकमें गिरता है।'

× × ×

देवताओंकी प्रिय, परम पवित्र, पुण्यमयी एकादशी तिथिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें पद्मपुराणमें एक सुन्दर कथा है। वह अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

बात है सत्ययुगकी। मुर-नामक अत्यन्त अद्भुत एवं पराक्रमी राक्षस था। उस वीर दानवने अत्यन्त सरलतासे इन्द्रपर विजय प्राप्त कर ली। देव-समुदाय मुरसे परास्त होकर स्वर्गसे भाग गया और प्राण-रक्षाके लिये पृथ्वीपर यत्र-तत्र छिपकर जीवन-निर्वाह करने लगा।

अत्यन्त दुःखी होकर सुरेन्द्रने देवताओंसहित भगवान् शंकरके समीप जाकर अपनी व्यथा-कथा सुनायी। देवाधिदेव महादेव देव-समुदायके साथ क्षीरसागरके तटपर पहुँचे। उस समय भगवान् गरुड़ध्वज शयन कर रहे थे। उनका दर्शन कर शचीपति इन्द्रने श्रीभगवान्‌की स्तुति की। भगवान् विष्णुके प्रसन्न होनेपर शचीपतिने निवेदन किया—'दयामय प्रभो! पूर्वकालमें चतुर्मुखके वंशमें तालजङ्घ-नामक महान् असुर उत्पन्न हुआ था। उसीका अत्यन्त उत्कट, महापराक्रमी और देवताओंके लिये भयंकर पुत्र मुर चन्द्रावती नगरीमें निवास करता है, उसके भयसे आक्रान्त होकर देवगण स्वर्गसे भाग गये हैं। उसने स्वर्ग-सिंहासनके लिये दूसरे इन्द्रको ही नहीं नियत किया है, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु एवं वरुण भी दूसरे बनाये हैं। उसके कारण देवताओंके लिये कहीं स्थान नहीं रह गया है। हमें आपका ही सहारा है, नाथ!'

देवेन्द्रकी दुःख-गाथा सुनकर दयामय भगवान् विष्णु चन्द्रावती नगरी पहुँचे। वहाँ उनका राक्षसोंसे भयानक संग्राम हुआ। भगवान् विष्णुके तीक्ष्ण चक्रसे शत-शत दैत्य कालके गालमें चले गये। इसके अनन्तर लोकनायक श्रीविष्णु बदरिकाश्रमकी बारह योजन लम्बी सिंहावती-नामक गुफामें जाकर सो गये। उस गुफामें एक ही प्रवेश-द्वार था। श्यामघन विष्णुको ढूँढ़ता हुआ दानवराज मुर उक्त गुफामें पहुँचकर श्रीभगवान्‌पर प्रहार करना ही चाहता था कि उनके मङ्गल-विग्रहसे अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्ज एक अनुपम रूपवैभव-सम्पन्न कन्या उत्पन्न हुई और महान् राक्षस मुरसे युद्ध करने लगी। युद्धकी प्रत्येक कलामें निपुण उक्त महिमामयी कन्याने अपने हुंकारमात्रसे ही अतुलित बलशाली देवरिपु मुरको भस्म कर दिया।

'कल्याणि ! इस असुरके वधसे त्रैलोक्यके देवता एवं मुनिगण प्रसन्न हुए हैं ।' अत्यन्त संतुष्ट होकर सर्वसमर्थ भगवान् विष्णुने कन्यासे कहा । 'तुम अपने इच्छानुसार वर माँग लो । देव-दुर्लभ वरदान भी मैं तुमको दे दूँगा ।'

'करुणामूर्ति प्रभो ! आपके ही प्रसादसे मैंने इस महादैत्यका वध किया है ।' कन्यारूपिणी साक्षात् एकादशीने सर्वलोकैकनाथ श्रीविष्णुसे निवेदन किया । 'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आपकी कृपासे मैं सम्पूर्ण तीर्थोंमें प्रधान, समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली देवी होऊँ । जो लोग उपवास रखकर, नक्त-भुक् (रात्रिमें एक बार खानेवाले) अथवा एकभुक्त (दिनमें एक बार खानेवाले) होकर आपमें भक्ति रखते हुए मेरे व्रतका पालन करें, उन्हें आप धन, धर्म और मोक्ष प्रदान करें ।'

'कल्याणि !' सर्वेश्वर विष्णुने देवी एकादशीको सहर्ष वर-प्रदान किया । 'तुम जो कुछ कहती हो, वह सब पूर्ण होगा ।'

क्षीराब्धिशायी श्रीविष्णुसे वर प्राप्तकर एकादशी अत्यन्त प्रसन्न हुई ।

× × × ×

दोनों पक्षोंकी एकादशी समान रूपसे कल्याण करनेवाली है । इसमें शुक्ल और कृष्णका भेद नहीं करना चाहिये । यह व्रत चैत्रादि सभी महीनोंके शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें किया जाता है—

एकादशी सदोपोष्या पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।

(सनत्कुमार)

शुक्ल और कृष्णमें कोई विशेषता नहीं है । जिस प्रकार शिव और विष्णु दोनों आराध्य हैं, उसी प्रकार कृष्ण और शुक्ल दोनों एकादशी उपोष्य हैं—

यथा विष्णुः शिवश्चैव तथैवैकादशी स्मृता ।

(वराहपुराण)

हाँ, पुत्रवान् गृहस्थ केवल शुक्ल एकादशी करे और वानप्रस्थ, संन्यासी तथा विधवा दोनों व्रत करें तो उत्तम होता है—

विधवाया वनस्थस्य यतेश्चैकादशीद्वये ।
उपवासो गृहस्थस्य शुक्लायामेव पुत्रिणः ॥

(कालादर्श)

विशेष-विशेष नक्षत्रोंका योग होनेपर यह तिथि जया, विजया, जयन्ती तथा पापनाशिनी—इन चार नामोंसे विख्यात होती है । जब शुक्लपक्षकी एकादशीको 'पुनर्वसु' नक्षत्र हो, तब वह उत्तम तिथि 'जया' कहलाती है । उसका व्रत करनेसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है । जब शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'श्रवण' नक्षत्र हो, तब वह श्रेष्ठ तिथि 'विजया'के नामसे प्रसिद्ध होती है; इसमें किया हुआ होम, उपवास, दान, ब्राह्मण-भोजन सहस्रगुना फल देता है । शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'रोहिणी' नक्षत्र होनेपर उक्त तिथि 'जयन्ती' कहलाती है और वह सम्पूर्ण पापोंको हरण कर लेती है । शुक्लपक्षकी द्वादशीमें 'पुष्य' नक्षत्र होनेपर वह महापुण्यमयी 'पापनाशिनी' तिथि कही जाती है । इस तिथिकी महिमा अनन्त है । पुष्य नक्षत्रसे युक्त एकमात्र पापनाशिनीका व्रत करके मनुष्य एक सहस्र एकादशियोंका फल प्राप्त कर लेता है । इस तिथिको सविधि व्रत कर श्रीविष्णुकी प्रीतिपूर्वक पूजा करनेसे करुणामय प्रभु शीघ्र संतुष्ट हो जाते हैं और श्रद्धालु भक्तको अपना दुर्लभ दर्शन भी दे देते हैं । यदि उदयकालमें थोड़ी-सी एकादशी, मध्यमें पूरी द्वादशी और अन्तमें किंचित् त्रयोदशी हो तो वह 'त्रिस्पृशा' एकादशी कहलाती है । यह श्रीभगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है । यदि एक त्रिस्पृशा एकादशीको उपवास कर लिया जाय तो एक सहस्र एकादशीके व्रतोंका फल प्राप्त होता है ।*

मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशीसे आरम्भ करके कार्तिक शुक्ला एकादशीतक चौबीस एकादशी तिथियाँ होती हैं । उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—उत्पन्ना, मोक्षा, सफला, पुत्रदा, षट्तिला, जया, विजया, आमलकी, पापमोचनी, कामदा, वरूथिनी, मोहिनी, अपरा, निर्जला, योगिनी, देवशयनी, कामिनी, पवित्रा, अजा, पद्मा, इन्दिरा, पापाङ्कुशा, रमा तथा प्रबोधिनी । दो एकादशी तिथियाँ मलमासकी होती हैं । उन दोनोंका नाम सर्वसम्पत्प्रदा है । पद्मपुराणमें पुरुषोत्तममास (मलमास)की दोनों एकादशियोंका नाम क्रमशः 'कमला' और 'कामदा' बताया गया है ।

तिथि और नक्षत्रका परिमाण ६० दण्ड (घड़ी) होता है । परंतु शास्त्रकार इनकी तीन अवस्थाएँ बतलाते हैं—सम्पूर्ण, क्षय और वृद्धि । सम्पूर्ण तिथिका मान ६० दण्ड होता है, क्षयका ६० दण्डसे कम और वृद्धिका ६० दण्डसे अधिक । स्कन्दपुराणमें कहा गया है—

प्रतिपत्प्रभृतयः सर्वा उदयादुदयाद्रवेः ।
सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः ॥

'सूर्योदयसे लेकर दूसरे दिनके सूर्योदयतक व्याप्त

* पद्मपुराण एवं अग्निपुराणके आधारपर ।

तिथि सम्पूर्णा कहलाती है, परंतु एकादशीके विषयमें यह बात नहीं है।' क्योंकि—

आदित्योदयवेलायाः प्राङ् मुहूर्तद्वयान्विता।
एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धान्या परिकीर्तिता॥

(भविष्यपुराण)

'एकादशी यदि सूर्योदयसे चार दण्ड पूर्व प्रवृत्त होकर दूसरे दिन सूर्योदयतक रहे तो उसको सम्पूर्णा कहेंगे, अन्यथा वह विद्धा हो जायगी।'

एकादशी तथा षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी।
तृतीया च चतुर्थी च अमावस्याष्टमी तथा।
उपोष्या परसंयुक्ता नोपोष्या पूर्वसंयुता॥

(पुराण)

'एकादशी, षष्ठी, पौर्णमासी, चतुर्दशी, तृतीया, चतुर्थी, अमावस्या तथा अष्टमी—इन तिथियोंको व्रत करना हो तो पूर्वतिथिसे संयुक्त दिनको उपवास न करे, अगली तिथिसे संयुक्त होनेपर उपवास करे।' जैसे एकादशी-व्रत करना हो तो दशमी-विद्धा एकादशीमें न करे, बल्कि द्वादशी-विद्धामें करे।

गर्ग-संहितामें उल्लेख है कि 'यदि पलभर भी दशमीसे वेध प्राप्त हो तो वह सम्पूर्ण एकादशी त्याग देने योग्य है—ठीक उसी तरह जैसे मदिराकी एक बूँद भी पड़ जाय तो गङ्गा-जलसे भरा हुआ कलश त्याज्य हो जाता है। यदि एकादशी बढ़कर द्वादशीके दिन भी कुछ कालतक विद्यमान हो तो दूसरे दिनवाली एकादशी ही व्रतके योग्य है। पहली एकादशीको उपवास नहीं करना चाहिये।'

पद्मपुराणमें आया है कि 'परवर्तिनी तिथिसे युक्त होनेपर ही एकादशीको उपवासका विधान है। पहले दिन दिनमें और रातमें भी एकादशी हो तथा दूसरे दिन केवल प्रातःकाल एक दण्ड एकादशी रहे तो पहली तिथिका परित्याग करके दूसरे दिनकी द्वादशीयुक्त एकादशीको ही उपवास करना चाहिये। यह विधि दोनों पक्षोंकी एकादशीके लिये है।'

अरुणोदयवेलायां दशमीसंयुता यदि।
अत्रोपोष्या द्वादशी स्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम्॥

(कण्वस्मृति)

बहुवाक्यविरोधेन संदेहो जायते यदा।
उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम्॥

(नारदपुराण)

'यदि अरुणोदयके समय दशमी हो अर्थात् दशमीविद्धा एकादशी हो, अथवा एकादशीके सम्बन्धमें विभिन्न मतोंके कारण मनमें संदेह पैदा हो जाय तो द्वादशीको उपवास करके त्रयोदशीको पारण करे।'

एकादश्यां निराहारो यो भुङ्क्ते द्वादशीदिने।
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे तद्व्रतं वैष्णवं महत्॥

(भविष्यपुराण)

'शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षमें एकादशीको निराहार रहकर जो द्वादशीके दिन भोजन करता है, उसका यह व्रत महान् वैष्णव-व्रत होता है, अर्थात् यह व्रत श्रीविष्णुभगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है।'

× × × ×

एक बार शास्त्र-मर्मज्ञा रासरासेश्वरी श्रीराधारानीने गोपाङ्गनाओंको एकादशी-व्रतकी विधि और महिमा बतायी, तब गोपियोंने उनसे पूछा—'राधे! कृपया यह बताइये कि यह एकादशी-व्रत पहले किसने किया था?'

ज्ञाननिधि श्रीराधाने उत्तर दिया—'गोपियो! सर्वप्रथम देवताओंने अपने छीने गये राज्यकी प्राप्ति तथा दैत्योंके विनाशके लिये एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया था। राजा वैशन्तने पूर्वकालमें यमलोकगत पिताके उद्धारके लिये एकादशी-व्रत किया था। लुम्पक-नामक नरेशने एकादशी-व्रतके प्रभावसे अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया था। संतोंके आदेशसे एकादशी-व्रतके द्वारा पुत्रहीन भद्रावती-नरेश केतुमान्‌को पुत्रकी प्राप्ति हुई थी। शापग्रस्त पुष्पदन्ती और माल्यवान्‌ने एकादशी-व्रतके द्वारा पुनः गन्धर्वत्वकी प्राप्ति कर ली थी। सेतु-निर्माण एवं रावण-वधके लिये दशरथ-नन्दन श्रीरामने एकादशी-व्रत किया था। प्रलयान्तमें उत्पन्न आमलकी वृक्षके नीचे बैठकर देवताओंने सबके कल्याणके लिये एकादशी-व्रत किया था। एकादशीके व्रतसे ही राजा मान्धाता, सगर, ककुत्स्थ और महामति मुचुकुन्द पुण्यलोकको प्राप्त हुए। धुन्धुमार आदि अन्य बहुत-से राजाओंने भी एकादशी-व्रतके प्रभावसे ही सद्गति प्राप्त की तथा भगवान् शंकर ब्रह्मकपालसे मुक्त हुए। राजा रुक्माङ्गद एकादशी-व्रतके प्रभावसे भूमण्डलका राज्य भोगकर पुरवासियोंसहित वैकुण्ठ-लोकको पधारे थे। इस महामहिमामय व्रतके आचरणसे भक्तवर अम्बरीषको कहीं भी प्रतिहत न होनेवाला ब्रह्मशाप स्पर्श भी नहीं कर सका। कुबेरके शापसे उत्पन्न हुआ हेममालीका असाध्य कुष्ठ इसी व्रतके प्रभावसे नष्ट हो गया। इस परम पुण्यमय

व्रतके द्वारा महीजित् नरेशको सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति ही नहीं हुई, वे स्वयं वैकुण्ठगामी हुए। इस व्रतके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्र पृथ्वीका राज्य भोगकर अन्तमें पुरवासियोंसहित श्रीहरिके सुखद धाममें पहुँच गये। सत्ययुगमें राजा मुचुकुन्दका दामाद शोभन भारतवर्षमें एकादशीका उपवास करके उसके पुण्य-प्रभावसे देवताओंके साथ मन्दराचलपर चला गया।' अन्तमें परम सती श्रीराधाने कहा—'गोपियो! एकादशीको सम्पूर्ण तिथियोंकी परमेश्वरी समझो। उसके समान अन्य कोई तिथि नहीं है।'

× × ×

एकादशीके दो भेद किये जा सकते हैं—नित्य और काम्या। इन्हें निष्काम और सकाम भी कह सकते हैं, पर व्रत-विधि दोनोंकी एक ही है। यदि एकादशीके नित्यव्रतके दिन (माता, पिता आदिका) नैमित्तिक श्राद्ध आ जाय, तो श्राद्ध और उपवास दोनों करने चाहिये; किंतु श्राद्धीय भोजनको (जिसे पुत्रको भी ग्रहण करना चाहिये) दाहिने हाथमें लेकर सूँघ ले और गौको खिलाकर स्वयं उपवास रक्खे।*

दोनों पक्षकी एकादशीको भोजन नहीं करना चाहिये। संसार-बन्धनका उच्छेद करनेकी इच्छावाले ब्राह्मणोंको सर्वथा इस परम पुण्यमयी तिथिका सेवन करना चाहिये। व्रती दशमी और द्वादशीको एक समय हविष्यान्न (जौ, मूँग), सेंधा नमक, कालीमिर्च, शर्करा और गोघृत आदिका भोजन करे और एकादशीको सर्वथा निराहार रहे।

दशमीको काँसेका पात्र, मांस, मसूर, कोदो, चना, साग, शहद, पराया अन्न, दुबारा भोजन तथा मैथुन—इन दस वस्तुओंको त्याग देना चाहिये। उस दिन जितेन्द्रिय होकर रात्रिमें सर्वाङ्गसुन्दर श्रीविष्णुका ध्यान एवं उनकी प्रार्थना करते हुए भूमिपर शयन करना शुभ होता है।

व्रत करनेवाला पुरुष प्रातःकाल व्रतका नियम ग्रहण करे और प्रातःकाल तथा मध्याह्नमें पवित्रताके लिये स्नान करे। स्नानके पहले निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर शरीरमें मृत्तिका लगा ले—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुंधरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम्॥
(प० पु०, उ० ४० । २८)

'वसुंधरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् विष्णुने भी वामन-अवतार धारण कर तुम्हें अपने पैरोंसे नापा था। मृत्तिके! मैंने पूर्वकालमें जो पाप संचित किया है, मेरे उस पापको हर लो।'

फिर स्नानादिसे निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र धारणकर गन्ध-पुष्पादि सामग्रियोंद्वारा भगवान् केशवकी विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें नैवेद्य अर्पित करे। घरमें भक्तियुक्त मनसे दीपक जलाकर रखे और फिर इस प्रकार संकल्प करे—

एकादश्यां निराहारः स्थित्वाद्याहं परेऽहनि।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥
(ना० पु० पू० भाग, २३ । १५)

'हे अच्युत! हे पुण्डरीकाक्ष! मैं आज एकादशीके दिन निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मेरे लिये शरणदाता हों।'

व्रती पुरुषको दृढ़ संकल्पके साथ क्रोध और लोभका परित्याग कर देना चाहिये। अन्त्यज, पाखण्डी, मिथ्यावादी, ब्राह्मणनिन्दक, परस्त्रीगामी, अन्यान्य दुराचारी, दुर्वृत्त तथा मर्यादा-भङ्ग करनेवालेसे बात भी न करे। एकादशीके दिन ये ग्यारह वस्तुएँ त्याज्य हैं—द्यूत, निद्रा, मद्यपान, दन्तधावन, परनिन्दा, चुगली, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध और असत्यभाषण।

एकादशीके दिन जहाँतक सम्भव हो, नवघनवपु शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी देवदेव भगवान् विष्णुके समीप निवास करे। उन्हीं दयामय प्रभुका स्मरण, चिन्तन एवं उन्हींके मङ्गलमय नामका जप करता रहे। गीता एवं विष्णु-सहस्रनामका पाठ तथा धर्मशास्त्रके अध्ययनद्वारा कालक्षेप करते हुए सम्पूर्ण दिवस व्यतीत करे। इसके साथ ही रात्रिमें विधिपूर्वक जागरण† करना चाहिये। जागरणकी विधि स्कन्दपुराणमें इस प्रकार बतलायी गयी है—

शृणु नारद वक्ष्यामि जागरस्य तु लक्षणम्।
येन विज्ञानमात्रेण दुर्लभो न जनार्दनः॥
गीतं वाद्यं च नृत्यं च पुराणपठनं तथा।
धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पगन्धानुलेपनम्॥
फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियनिग्रहः।
सत्यान्वितं विनिद्रं च मुदायुक्तं क्रियान्वितम्॥

---

* उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम्॥
(कात्यायन)

† 'विना जागरणं गौरि विष्णोर्दिनफलं नहि।' (स्कन्दपुराण)
शिवजी कहते हैं—'पार्वति! हरिवासरकी रात्रिमें जागरण किये विना व्रतका फल नहीं मिलता।'

आश्चर्यं चैव सोत्साहं पापालस्यादिवर्जितम्।
प्रदक्षिणाभिः संयुक्तं नमस्कारपुरस्सरम्॥
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा।
यामे यामे महाभाग कुर्यादारात्रिकं हरेः॥
अभावे वाचकस्याथ गीतं नृत्यं च कारयेत्।
वाचके सति·····पुराणं प्रथमं पठेत्॥

'नारद ! जागरणके नियम बतलाता हूँ, श्रवण करो। इसको जाननेके बाद श्रीजनार्दन दुर्लभ नहीं रह जाते। हे महाभाग ! श्रीहरिके जागरणमें एकाग्रचित्तसे गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण-पाठका आयोजन करे; धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, गन्ध (इत्र आदि); चन्दनादिका लेप, फल, अर्घ्य और श्रद्धा अर्पण करे; दान और इन्द्रियसंयम करे; सत्यनिष्ठा, निद्राहीनता, आनन्द-प्रकाश, क्रियानुष्ठान, विस्मय और उत्साह-प्रदर्शनमें तत्पर रहे; पाप और आलस्य आदिका त्याग, प्रदक्षिणा, नमस्कार और पहर-पहरमें आरती करे।

—इस प्रकार विविध उपचारोंसे श्रीहरिकी उपासना करता हुआ जागरण करे। शंकरजी कहते हैं—'पार्वति ! वाचकका अभाव हो तो केवल गीत-नृत्यादि ही करायें। परंतु वाचकके रहनेपर पहले पुराण-पाठ करायें।'

पुण्यमयी एकादशीका व्रती द्वादशीके दिन प्रातःकाल स्नान करे और संयतेन्द्रिय होकर भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। एकादशीके दिन भगवान् जनार्दनको पञ्चामृतसे स्नान कराकर द्वादशीको दुग्धसे स्नान करानेपर श्रीहरिका सारूप्य प्राप्त होता है। आरतीके पश्चात् श्रीभगवान्‌के पाद-पद्मोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम निवेदनकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये—

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥

(ना० पु० पू० भा० २१। २०)

'केशव ! मैं अज्ञानरूपी तिमिर रोगसे अंधा हो रहा हूँ। मेरे इस व्रतसे आप प्रसन्न हों और प्रसन्नमुख होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

इस प्रकार द्वादशीके दिन भगवान् श्रीविष्णुसे निवेदन करके एकाग्रचित्तसे यथाशक्ति ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक भोजन कराके उन्हें दक्षिणा दे और फिर उनके चरणोंमें प्रणाम करते हुए अपने अपराधोंके लिये क्षमा-याचना कर द्वादशीके भीतर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक तुलसीदल ग्रहण करके पारण करे।

(शि० दु०)

'नारायण'-नाम-स्मरणके सम्बन्धमें महामना मालवीयजीका अनुभव

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद महामना श्रीमालवीयजीसे मेरा परिचय लगभग सन् १९०६ से था। उस समय मैं कलकत्तामें रहता था। वे जब-जब वहाँ पधारते, तब-तब मैं उनके दर्शन करता। मुझपर आरम्भसे अन्ततक उनकी परम कृपा रही और वह उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। उनके साथ कुटुम्बका-सा सम्बन्ध हो गया था। वे मुझको अपना एक पुत्र समझने लगे और मैं उन्हें परम आदरणीय पितासे भी बढ़कर मानता था। इस नाते मैं उन्हें 'पण्डितजी' न कहकर सदा 'बाबूजी' ही कहता। वे एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके चरणोंमें बैठा था। वे अकेले ही थे। बड़े स्नेहसे बोले—'भैया ! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी; तुमको दे रहा हूँ। देखनेमें चीज छोटी-सी दीखेगी, पर है महान्—वरदानरूप।' इस प्रकार प्रायः आध घंटेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। मैंने आतुरतासे कहा—'बाबूजी ! जल्दी दीजिये, कोई आ जायँगे।'

तब वे बोले—"लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और बड़ी विनयके साथ मैंने उनसे यह वरदान माँगा कि मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं कहीं भी जाऊँ सफलता प्राप्त करूँ।"

"माताजीने स्नेहसे मेरे सिरपर हाथ रखा और कहा—'बच्चा ! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कहीं भी जाओ, तब जानेके समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लिया करो। तुम सदा सफल होओगे।' मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया। हनुमानप्रसाद ! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो मेरे जीवनमें—चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र—मेरी माताकी दी हुई परम दुर्लभ वस्तु तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना।"

यों कहकर महामना गद्गद हो गये। मैंने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

'हरिः शरणम्'-मन्त्रके जपका अलौकिक प्रभाव

प्रार्थनाका बड़ा चमत्कारिक प्रभाव होता है। हमने अपने जीवनमें इसका बहुत बार अनुभव किया है। प्रार्थनासे भीषण-से-भीषण रोग ठीक हो सकते हैं। कलकत्तामें श्रीरूड़मलजी गोयन्दका एक प्रसिद्ध व्यवसायी हुए हैं। एक बार उनको प्लेग हुआ। १०४-५ डिग्री बुखार और दोनों जाँघोंमें बड़ी-बड़ी गिल्टियाँ निकल आयी थीं। उस समय कलकत्तामें सर कैलासचन्द्र बोस बड़े प्रसिद्ध डाक्टर थे। उन्हें बुलाया गया। उन्होंने देखकर कहा—'बचनेकी आशा बिल्कुल नहीं है। रात निकलना कठिन है। सावधान रहना चाहिये।' वे यह कहकर चले गये। श्रीरूड़मलजी संस्कृतके पण्डित थे। भागवत पढ़ा करते थे। भागवतके माहात्म्यमें नारदजीने श्रीसनकादिसे उनकी प्रशंसामें यह कहा कि 'आप सदा बालकरूपमें इसलिये बने रहते हैं कि आप 'हरिः शरणम्'-मन्त्रका जप नित्य करते हैं।' श्रीरूड़मलजीको वह प्रसङ्ग स्मरण हो आया। उन्होंने अपने सेवक गोविन्दको बुलाया और कहा—'गङ्गाजल लाओ, शरीर पोंछेंगे।' गङ्गाजल आ गया। उन्होंने अँगोछेको गङ्गाजलमें भिगवाकर सारा शरीर पोंछवाया और कमरा बंद करके भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति सामने रख ली और वे श्रीकृष्णमें मन लगाकर 'हरिः शरणम्'-मन्त्रका जप करने लगे। कई घंटेतक तो वे जप करते रहे, पीछे उन्हें स्मरण नहीं रहा कि क्या हुआ। लगभग ४ बजे जब चेतना हुई, तब उन्हें लगा—शरीर हल्का है, बुखार नहीं है। उन्होंने टटोलकर देखा—दोनों गिल्टियाँ भी गायब हैं। तब उन्होंने उठकर एवं चलकर देखा—बिल्कुल स्वाभाविकता अनुभव हुई। उन्होंने कमरेका दरवाजा खोला और नौकरको आवाज दी। नौकर आया और सेठजी अपने दैनिक कृत्यमें लग गये। अब वे बिल्कुल स्वस्थ थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल डाक्टर सर कैलाश श्रीरूड़मलजीके पड़ोसमें एक अन्य रोगीको देखने आये। रोगीको देखनेपर डाक्टर साहबने सेठजीके परिवारके एक सज्जनसे पूछा—'आपलोग रात्रिमें कितने बजे श्मशानसे लौटे?' उन्होंने प्रश्न किया—'किसकी अन्त्येष्टिकी बात कर रहे हैं?' डाक्टर साहब बोले—'श्रीरूड़मलजीकी हालत रातमें बहुत अधिक खराब थी, रात्रिमें उनका शरीर शान्त हो गया होगा और अन्त्येष्टि भी हो गयी होगी। आपको पता नहीं चला क्या?' सेठजीने कहा—'हमें तो कुछ भी पता नहीं है।' तब डाक्टर साहब पता लगाने श्रीरूड़मलजीके घरपर आये। आते ही उन्होंने देखा कि श्रीरूड़मलजी चाँदीकी चौकीपर चाँदीके थालमें पीताम्बर पहने प्रसाद पा रहे हैं। उन्हें इस प्रकार खाते देख डाक्टर साहबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्हें लगा—इन्होंने रात जैसे-तैसे निकाल दी है और अब ये संनिपातमें खाने बैठ गये हैं। डाक्टर साहबने पूछा—'सेठजी! किसके कहनेसे खा रहे हैं?' सेठजी बोले—'जिसकी दवासे ठीक हुए हैं।' इतना सुननेपर भी डाक्टर साहबको लगा—ये संनिपातमें ही बोल रहे हैं। डाक्टर साहब घरवालोंको सावधान करके चले गये कि 'आपलोग ख्याल रखें, ये संनिपातमें खा रहे हैं।' पर श्रीरूड़मलजी तो पूर्ण स्वस्थ हो गये थे। उन्होंने छककर प्रसाद पाया और पूर्ण स्वस्थ रहे।

पीछे श्रीरूड़मलजीने स्वयं पूरी बात सुनायी—'जब डाक्टर साहबने कह दिया कि रात्रि निकालनी कठिन है, तब हमें मरनेका सोच तो रहा नहीं। भागवत-माहात्म्यके अन्तर्गत श्रीनारद-सनकादिका प्रसङ्ग स्मरण हो आया और हमने श्रीसनकादिके प्रिय मन्त्र 'हरिः शरणम्'का जाप शुरू कर दिया।'

ऐसे अनेकों प्रसङ्ग हमने देखे-सुने तथा अनुभव किये हैं कि 'भगवान्पर विश्वास हो और सच्चे हृदयसे भगवान्से प्रार्थना की जाय तो भगवान्के यहाँ सब कुछ सम्भव है।'

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीविष्णोरष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

अष्टोत्तरं शतं नाम्नां विष्णोरतुलतेजसः। यस्य श्रवणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्॥ १॥
विष्णुर्जिष्णुर्वषट्कारो देवदेवो वृषाकपिः। दामोदरो दीनबन्धुरादिदेवोऽदितेः सुतः॥ २॥
पुण्डरीकः परानन्दः परमात्मा परात्परः। परशुधारी विश्वात्मा कृष्णः कलिमलापहः॥ ३॥
कौस्तुभोद्भासितोरस्को नरो नारायणो हरिः। हरो हरप्रियः स्वामी वैकुण्ठो विश्वतोमुखः॥ ४॥
हृषीकेशोऽप्रमेयात्मा वराहो धरणीधरः। वामनो वेदवक्ता च वासुदेवः सनातनः॥ ५॥
रामो विरामो विरजो रावणारी रमापतिः। वैकुण्ठवासी वसुमान् धनदो धरणीधरः॥ ६॥
धर्मेशो धरणीनाथो ध्येयो धर्मभृतां वरः। सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ ७॥
सर्वगः सर्ववित्सर्वः शरण्यः साधुवल्लभः। कौसल्यानन्दनः श्रीमान् रक्षःकुलविनाशकः॥ ८॥
जगत्कर्ता जगद्धर्ता जगज्जेता जनार्तिहा। जानकीवल्लभो देवो जयरूपो जलेश्वरः॥ ९॥
क्षीराब्धिवासी क्षीराब्धितनयावल्लभस्तथा। शेषशायी पन्नगारिवाहनो विष्टरश्रवाः॥ १०॥
माधवो मथुरानाथो मोहदो मोहनाशनः। दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो ह्यच्युतो मधुसूदनः॥ ११॥
सोमसूर्याग्निनयनो नृसिंहो भक्तवत्सलः। नित्यो निरामयः शुद्धो नरदेवो जगत्प्रभुः॥ १२॥
हयग्रीवो जितरिपुरुपेन्द्रो रुक्मिणीपतिः। सर्वदेवमयः श्रीशः सर्वाधारः सनातनः॥ १३॥
सौम्यः सौम्यप्रदः स्रष्टा विष्वक्सेनो जनार्दनः। यशोदातनयो योगी योगशास्त्रपरायणः॥ १४॥
रुद्रात्मको रुद्रमूर्ती राघवो मधुसूदनः। इति ते कथितं दिव्यं नाम्नामष्टोत्तरं शतम्॥ १५॥
सर्वपापहरं पुण्यं विष्णोरमिततेजसः। दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यनाशनं सुखवर्द्धनम्॥ १६॥
सर्वसम्पत्करं सौम्यं महापातकनाशनम्। प्रातरुत्थाय विप्रेन्द्र पठेदेकाग्रमानसः।
तस्य नश्यन्ति विपदां राशयः सिद्धिमाप्नुयात्॥ १७॥

(मन्त्रमहार्णव)

अनुपम तेजस्वी भगवान् विष्णुका यह अष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र है, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य नारायणस्वरूप हो जाता है—॥ १॥

१ **विष्णुः**—सर्वव्यापी, २ **जिष्णुः**—विजयी, ३ **वषट्कारः**—जिनके उद्देश्यसे यज्ञमें 'वषट्'के उच्चारणपूर्वक आहुति दी जाती है, ऐसे यज्ञस्वरूप अथवा वेदोक्त तैंतीस देवताओंमें एक, ४ **देवदेवः**—देवताओंके भी देवता अर्थात् पूज्य, ५ **वृषाकपिः**—श्रेष्ठ वराहरूप, ६ **दामोदरः**—यशोदा मैयाने जिनके उदरमें रस्सी बाँध दी थी—ऐसे श्रीकृष्णरूप, ७ **दीनबन्धुः**—दीनोंके बन्धु अर्थात् सहायक, ८ **आदिदेवः**—सबके आदि कारण और दिव्यस्वरूप, ९ **अदितेः सुतः**—(उपेन्द्रके रूपमें) अदितिके पुत्र, १० **पुण्डरीकः**—कमल-सदृश सुकुमार अङ्गोंवाले, ११ **परानन्दः**—परमानन्दस्वरूप, १२ **परमात्मा**—परम आत्मबलसे सम्पन्न, १३ **परात्परः**—परमोत्कृष्ट, १४ **परशुधारी**—फरसा धारण करनेवाले परशुराम-स्वरूप, १५ **विश्वात्मा**—विश्वके आत्मस्वरूप, १६ **कृष्णः**—सबके चित्तको बलात्कारसे अपनी ओर आकर्षित करनेवाले परमानन्दस्वरूप, १७ **कलिमलापहः**—कलियुगके दोषोंको अपहरण करनेवाले, १८ **कौस्तुभोद्भासितोरस्कः**—कौस्तुभ-मणिकी कान्तिसे उद्भासित वक्षःस्थलवाले, १९ **नरः**—नर-ऋषिके अवतार, २० **नारायणः**—जलमें शयन करनेवाले, २१ **हरिः**—भक्तजनोंके पापोंका हरण करनेवाले, २२ **हरः**—संहारकर्ता शिव के ही दूसरे रूप, २३ **हरप्रियः**—शंकरजीके प्रेमी अथवा शंकरको प्रिय माननेवाले, २४ **स्वामी**—जीवोंके अधीश्वर, २५ **वैकुण्ठः**—परमधामस्वरूप, २६ **विश्वतोमुखः**—सब ओर मुखवाले, २७ **हृषीकेशः**—इन्द्रियोंके स्वामी, २८ **अप्रमेयात्मा**—किसी प्रकार भी मापे न जा सकनेवाले, २९ **वराहः**—(हिरण्याक्षका वध करनेके लिये) वराहरूप धारण करनेवाले, ३० **धरणीधरः**—वराह और शेषरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले, ३१ **वामनः**—वामनरूपमें प्रकट होनेवाले, ३२ **वेदवक्ता**—वेदोंके वक्ता,

३३ वासुदेवः—वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्ण, **३४ सनातनः**—पुराणपुरुष, **३५ रामः**—श्रीराम, परशुराम अथवा बलरामके रूपमें प्रकट होनेवाले, **३६ विरामः**—प्रलयके समय प्राणियोंको अपनेमें विराम देनेवाले, **३७ विरजः**—रजोगुण तथा तमोगुणसे सर्वथा शून्य, **३८ रावणारिः**—राक्षसराज रावणके शत्रु, **३९ रमापतिः**—लक्ष्मीके प्राणपति, **४० वैकुण्ठवासी**—परमधाममें निवास करनेवाले, **४१ वसुमान्**—समस्त सम्पत्तियोंसे युक्त, **४२ धनदः**—धन प्रदान करनेवाले अथवा कुबेरस्वरूप, **४३ धरणीधरः**—अनन्त भगवान्‌के रूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले, **४४ धर्मेशः**—धर्मके अधिष्ठाता, **४५ धरणीनाथः**—पृथ्वीके स्वामी, **४६ ध्येयः**—ध्यान करने योग्य, **४७ धर्मभृतां वरः**—धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ, **४८ सहस्रशीर्षा**—हजारों सिरवाले, **४९ पुरुषः**—पुर अर्थात् शरीरमें शयन करनेवाले, **५० सहस्राक्षः**—हजारों नेत्रवाले, **५१ सहस्रपात्**—हजारों पैरवाले, **५२ सर्वगः**—निराकाररूपसे अथवा कारणरूपसे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले, **५३ सर्ववित्**—सब कुछ जाननेवाले, **५४ सर्वः**—सर्वरूप, सब कुछ बने हुए, **५५ शरण्यः**—शरणमें आये हुएकी रक्षा करनेवाले, **५६ साधुवल्लभः**—साधुजनोंके प्रिय अथवा साधुजनोंको प्रिय माननेवाले, **५७ कौसल्यानन्दनः**—कौसल्याको आनन्दित करनेवाले, **५८ श्रीमान्**—शोभाशाली, **५९ रक्षःकुलविनाशकः**—राक्षसोंके कुलका विनाश करनेवाले, **६० जगत्कर्ता**—ब्रह्मारूपसे जगत्‌की सृष्टि करनेवाले, **६१ जगद्धर्ता**—संसारका धारण-पोषण करनेवाले, **६२ जगज्जेता**—जगत्‌को जीतनेवाले, **६३ जनार्तिहा**—स्वजनोंका दुःख दूर करनेवाले, **६४ जानकीवल्लभः**—जनकनन्दिनीके प्रियतम, **६५ देवः**—दिव्यस्वरूप, **६६ जयरूपः**—विजयके मूर्तरूप, **६७ जलेश्वरः**—जलके अधिपति वरुणस्वरूप, **६८ क्षीराब्धिवासी**—क्षीरसागरमें निवास करनेवाले, **६९ क्षीराब्धितनयावल्लभः**—क्षीरसागरकी कन्या लक्ष्मीके प्राणप्रियतम, **७० शेषशायी**—शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले, **७१ पन्नगारिवाहनः**—सर्पोंके शत्रु गरुड़पर सवारी करनेवाले, **७२ विष्टरश्रवाः**—विस्तृत कीर्तिवाले, **७३ माधवः**—लक्ष्मीके पति, **७४ मथुरानाथः**—मथुरापुरीके पालक, **७५ मोहदः**—अपने चरणोंमें मोह (प्रेम) उत्पन्न करनेवाले, **७६ मोहनाशनः**—सांसारिक मोह-बन्धनसे छुड़ानेवाले, **७७ दैत्यारिः**—दैत्योंके शत्रु, **७८ पुण्डरीकाक्षः**—कमल-सदृश नेत्रोंवाले, **७९ अच्युतः**—अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले, **८० मधुसूदनः**—मधुनामक दैत्यको मारनेवाले, **८१ सोमसूर्याग्निनयनः**—चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप नेत्रोंवाले, **८२ नृसिंहः**—हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये नृसिंहरूपमें अवतार लेनेवाले, **८३ भक्तवत्सलः**—भक्तोंसे प्रेम करनेवाले, **८४ नित्यः**—अविनाशी, **८५ निरामयः**—रोग-दोषसे रहित, **८६ शुद्धः**—निर्दोष, **८७ नरदेवः**—मनुष्योंके देवता अथवा राजा, **८८ जगत्प्रभुः**—जगत्‌के अधीश्वर, **८९ हयग्रीवः**—मधु-कैटभका वध करके वेदोंका उद्धार करनेके लिये हयग्रीवरूपमें अवतार लेनेवाले, **९० जितरिपुः**—शत्रुओंको जीतनेवाले, **९१ उपेन्द्रः**—इन्द्रके अनुज—वामन, **९२ रुक्मिणीपतिः**—रुक्मिणीके प्राणनाथ, **९३ सर्वदेवमयः**—सम्पूर्ण देवताओंके रूपमें विराजमान, **९४ श्रीशः**—लक्ष्मीके पति, **९५ सर्वाधारः**—समस्त भूतोंके आधारस्वरूप, **९६ सनातनः**—अनादि देव, **९७ सौम्यः**—गम्भीर और कोमल स्वभाववाले, **९८ सौम्यप्रदः**—शान्ति प्रदान करनेवाले, **९९ स्रष्टा**—सृष्टि-रचना करनेवाले, **१०० विष्वक्सेनः**—दैत्योंकी सेनाको तितर-बितर करनेवाले, **१०१ जनार्दनः**—भक्तोंके द्वारा परम पुरुषार्थकी याचना किये जानेवाले, **१०२ यशोदातनयः**—यशोदाके पुत्र, **१०३ योगी**—योगमें निष्णात, **१०४ योगशास्त्रपरायणः**—योगशास्त्रके परम लक्ष्यस्वरूप, **१०५ रुद्रात्मकः**—रुद्ररूप आत्मावाले, **१०६ रुद्रमूर्तिः**—जगत्‌के संहारके लिये रुद्ररूप धारण करनेवाले, **१०७ राघवः**—रघुकुलमें श्रीरामरूपसे उत्पन्न होनेवाले, **१०८ मधुसूदनः**—पुष्प-रसके विनाशक भ्रमरकी-सी कान्तिवाले ॥ २—१४½ ॥

इस प्रकार अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुका यह दिव्य अष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र तुम्हें बतला दिया गया। यह सम्पूर्ण पापोंको हरनेवाला, पुण्यप्रद, दुःख, दरिद्रता और दुर्भाग्यका विनाशक, सुखकी वृद्धि करनेवाला, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका दाता, प्रसन्न करनेवाला तथा बड़े-बड़े पातकोंका विनाश करनेवाला है। विप्रेन्द्र! जो प्रातःकाल उठकर एकाग्रचित्तसे इसका पाठ करेगा, उसकी राशि-राशि विपत्तियाँ नष्ट हो जायँगी और उसे सिद्धिकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १५—१७ ॥

वैष्णव-महापञ्जरस्तोत्र

नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम्। प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः॥
गदां कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभ नमोऽस्तु ते। याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः॥
हलमादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम। प्रतीच्यां रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः॥
मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्। उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः॥
खड्गमादाय चर्माथ अस्त्रशस्त्रादिकं हरे। नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणं गतः॥
पाञ्चजन्यं महाशङ्खमनुद्बोधं च पङ्कजम्। प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां रक्ष शूकर॥
चन्द्रसूर्य्यं समागृह्य खड्गं चान्द्रमसं तथा। नैर्ऋत्यां मां च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेशरिन्॥
वैजयन्तीं सम्प्रगृह्य श्रीवत्सं कण्ठभूषणम्। वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तु ते॥
वैनतेयं समारुह्य त्वन्तरिक्षे जनार्दन। मां च रक्षाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित॥
विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले। अकूपार नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते॥
करशीर्षाद्यङ्गुलीषु सत्य त्वं बाहुपञ्जरम्। कृत्वा रक्षस्व मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम॥

(गरुडपुराण १३। १—११)

हे गोविन्द! आपको बारंबार नमस्कार है। हे विष्णु! आप सुदर्शन चक्र ग्रहणकर पूर्व दिशामें मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। आप कौमोदकी गदा ग्रहण कीजिये और दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपके शरणागत हूँ। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। आप सौनन्द नामक हल ग्रहणकर पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष! हे जगन्नाथ! मुसल ग्रहणकर आप उत्तर दिशामें मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपके शरणागत हूँ। हे श्रीहरि! तलवार और ढाल तथा दूसरे अस्त्र-शस्त्रादि लेकर ईशान दिशामें मेरी रक्षा कीजिये। हे राक्षसोंके नाश करनेवाले! आपको नमस्कार है। मैं आपके शरणागत हूँ। हे वाराह-अवतार लेनेवाले विष्णु! आप पाञ्चजन्य नामक शङ्ख और अनुद्बुद्ध (अधखिला) पङ्कज लेकर अग्निकोणमें मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। हे दिव्य शरीरवाले नृसिंहस्वरूप तथा चन्द्रसूर्य-मूर्ति विष्णो! चन्द्रमाके समान प्रकाशसे युक्त चान्द्रमस नामकी तलवार ग्रहणकर नैर्ऋत्यकोणमें मेरी रक्षा कीजिये। हे हयग्रीव! अपने गलेमें वैजयन्तीमाला तथा श्रीवत्सचिह्न धारणकर वायुकोणमें मेरी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है। हे दुष्टोंका मर्दन करनेवाले जनार्दन! आप गरुड़पर आरूढ़ होकर अन्तरिक्षमें मेरी रक्षा कीजिये। हे अजित! हे अपराजित! आपको सब समय नमस्कार है। हे समुद्रस्वरूप विष्णु! आप विशाल नेत्रवाले मत्स्यपर आरूढ होकर रसातलमें मेरी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है। हे महान् मत्स्यावतारधारी प्रभो! आपको नमस्कार है। हे सत्यस्वरूप विष्णु! आप मेरे हाथ, मस्तक तथा अँगुलियोंमें बाहुरूप पञ्जरसे मेरी रक्षा कीजिये। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है।

विष्णुप्रिया तुलसीकी आरती

आरति विष्णु-प्रिया तुलसीकी।
सेव्या सुर-नर-असुर—सभीकी॥
विष्णु-वल्लभा सिन्धु-सुता-सी,
रघुनन्दन-दयिता सीता-सी,
केशव-कान्ता व्रज-वनिता-सी,
नारायणके हृदय-बसीकी॥ १॥
आगम-निगम-पुराण-प्रशंसित,
ऋषि-मुनि-भक्त-संत-जन-वन्दित,
परम सती, सौभाग्य अखण्डित,
त्रिभुवन-व्यापित-कीर्ति-लसीकी॥ २॥
व्यर्थ कमल, पाटल, गङ्गाजल,
सकल अर्चना-पूजा निष्फल,
बिना एक केवल तुलसीदल,
महिमानिधि, मङ्गल्यमयीकी॥ ३॥
सेवक हेतु सकल-सुख-दात्री,
लोक तथा परलोक विधात्री,
जन-हित-चित्ता, करुणा-गात्री,
कृपा-क्षमा-वात्सल्य-भरीकी॥ ४॥
वृन्दा, वृन्दावनी, नन्दिनी,
विश्वपूजिता, विश्वपावनी,
पुष्पप्रधाना, कृष्णजीवनी,
'तुलसी' पावन नामवतीकी॥ ५॥

—माधवशरण

श्रीविष्णुलहरी

[श्रीजगन्नाथपण्डितराजविरचिता]

(अनुवादक—पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल, शास्त्री, साहित्यकेसरी)

विषीदता नाथ विषानलोपमे विषादभूमौ भवसागरे विभो।
परं प्रतीकारमपश्यताधुना मयायमात्मा भवते निवेदितः॥ १॥

नाथ ! मैं इस समय विषाग्निसदृश एवं विषादके उत्पत्तिस्थानस्वरूप भवसागरमें पड़ा हुआ कष्ट झेल रहा हूँ तथा (उससे उद्धारका) इस समय मुझे कोई उपाय भी नहीं सूझ रहा है; इसलिये विभो ! मैंने यह आत्मा आपको समर्पित कर दिया है॥ १॥

भवानलज्वालविलुप्तचेतनः शरण्य तेऽङ्घ्रिं शरणं भयादयाम्।
विभाव्य भूयोऽपि दयासुधाम्बुधे विधेहि मे नाथ यथा यथेच्छसि॥ २॥

शरणागतवत्सल ! भवरूपी दावाग्निकी ज्वालासे मेरी चेतना विलुप्त हो गयी है, इसीसे मैं भयभीत होकर आपके चरणोंकी शरणमें आ पड़ा हूँ। नाथ ! आप तो दयारूपी अमृतके सागर हैं; अतः मेरे विषयमें विशेषरूपसे विचार करके जैसी-जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा मेरे लिये विधान कीजिये॥ २॥

विहाय संसारमहामरुस्थलीमलीकदेहादिमिलन्मरीचिकाम्।
मनोमृगो मे करुणामृताम्बुधे विगाढुमीश त्वयि गाढमीहते॥ ३॥

ईश ! आप करुणारूपी अमृतके महासागर हैं; इसलिये मेरा मनोमृग संसाररूपी विशाल मरुस्थलीका, जो मिथ्या देहादिरूपा मरीचिकासे व्याप्त है, परित्याग करके आपमें गहरे गोते लगाना चाहता है॥ ३॥

त्वदङ्घ्रिफुल्लाम्बुजमध्यनिर्गलन्मरन्दनिस्यन्दनितान्तलम्पटः।
मनोमिलिन्दो मम मुक्तचापलस्त्वदन्यमीशान तृणाय मन्यते॥ ४॥

स्वामिन् ! मेरा मन-भ्रमर चपलता छोड़कर आपके विकसित कमल-पुष्प-सदृश चरणोंके मध्यसे चूते हुए मकरन्दका एकान्त-लोभी हो गया है, इसीलिये अब वह आपके अतिरिक्त अन्यको तृणवत् मान रहा है॥ ४॥

जगत्त्रयत्राणविधौ धृतव्रतं तवाङ्घ्रिराजीवमपास्य ये जनाः।
शरण्यमन्यन्मृगयन्ति यान्ति ते नितान्तमीशान कृतान्तदेहलीम्॥ ५॥

प्रभो ! जो मनुष्य आपके चरण-कमलको, जो त्रिलोकीकी रक्षाके लिये कटिबद्ध है, छोड़कर दूसरे किसी शरणागतपालककी खोज करते हैं, वे निश्चय ही यमराजकी ड्योढ़ीपर जाते हैं अर्थात् नरकगामी होते हैं॥ ५॥

रमामुखाम्भोजविकासनक्षमो जगत्त्रयोद्बोधविधानदीक्षितः।
कदा मदज्ञानविभावरीं हरे हरिष्यति त्वन्नयनारुणोदयः॥ ६॥

हरे ! जो लक्ष्मीके मुख-कमलको विकसित करनेमें समर्थ तथा त्रिलोकीको उद्बोधित करनेकी प्रक्रियामें दीक्षित है, आपका कटाक्षरूपी वह अरुणोदय मेरी अज्ञानरात्रिको कब नष्ट करेगा ?॥ ६॥

मुनीन्द्रचित्तैकचकोरजीविका समस्तसंतापचयापनोदिनी।
महानिशीथे मम मानसे कदा स्फुरिष्यति त्वन्नखचन्द्रचन्द्रिका॥ ७॥

प्रभो ! जो मुनीश्वरोंके चित्तरूपी चकोरका एकमात्र जीवन-आधार तथा समस्त संताप-समूहका विनाश करनेवाली है, आपके नखचन्द्रोंकी वह चाँदनी घोर अन्धकारसे व्याप्त अर्धरात्रि-सरीखे मेरे मनमें कब अपनी छटा दिखायेगी ?॥ ७॥

सुयौवनापाण्डुरगण्डमण्डलप्रतिस्फुरत्कुण्डलताण्डवाद्भुतम्।
गदाग्रज त्वन्मुखफुल्लपङ्कजं कदा मदक्ष्णोरतिथीभविष्यति॥ ८॥

गदाग्रज ! नवयौवनकी पूर्णताके कारण गुलाबी कपोलोंपर झलमलाते हुए कुण्डलोंके ताण्डवनृत्यसे जिसकी निराली शोभा हो रही है, आपका वह विकसित कमल-पुष्प-सा मुख कब मेरी आँखोंका अतिथि बनेगा ? ॥ ८ ॥

सुरापगातुङ्गतरङ्गचालितां सुरासुरानीकललाटलालिताम् ।
कदा दधे देव दयामृतोदधे भवत्पदाम्भोरुहधूलिधोरणीम् ॥ ९ ॥

दयामृतके सागर देव ! देवनदी गङ्गाकी ऊँची-ऊँची लहरें जिसे चञ्चल करती रहती हैं तथा देवताओं और असुरोंके दल जिसे अपने ललाटपर धारण करते हैं, आपके चरण-कमलोंके उस रजःसमूहको मैं कब (अपने मस्तकपर) धारण करूँगा ? ॥ ९ ॥

महाजवाश्छिन्नविवेकरश्मयो मदोद्धता देव मदक्षवाजिनः ।
हरे समासाद्य तवाङ्घ्रिमन्दुरामपास्तवेगा दधतां सुशीलताम् ॥ १० ॥

देव ! मेरे इन्द्रियरूपी घोड़े बड़े वेगशाली हैं, ये मदसे उद्दण्ड हो गये हैं और उनकी विवेकरूपी रास भी छिन्न-भिन्न हो गयी है; अतः हरे ! ऐसा कीजिये कि ये आपके चरणरूपी घुड़सालमें पहुँचकर वेगहीन हो जायँ और उत्तम स्वभाव धारण कर लें ॥ १० ॥

पुरातनानां वचसामगोचरं महेशितारं पुरुषोत्तमं पतिम् ।
अपास्य तं त्वां निरपत्रपा सती सती मतिर्मे कथमन्यमेष्यति ॥ ११ ॥

आप पुरातन वचन—वेद-वाणीके अप्रत्यक्ष, महान् शासक, पुरुषोत्तम और स्वामी हैं; ऐसे आपको छोड़कर मेरी सती—सदसद्विवेकिनी अथवा पतिव्रता बुद्धि निर्लज्ज होकर कैसे दूसरेके पास जायगी ॥ ११ ॥

न जाग्रता स्वप्नगतेन वा मया समीहितं ते करुणालवादृते ।
गिरं मदीयां यदि वेत्सि तात्त्विकीं तदा जगन्नायक मामुरीकुरु ॥ १२ ॥

जगदीश्वर ! जाग्रदवस्था अथवा स्वप्नमें भी मैंने आपकी करुणाकी कणिकाके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं की है । यदि मेरी यह वाणी आप तत्त्वयुक्त अर्थात् सत्य मानते हैं तो मुझे स्वीकार कीजिये ॥ १२ ॥

अयि दीनतरं दयानिधे दुरवस्थं सकलैः समुज्झितम् ।
अधुनापि न मां निभालयन् भजसे हा कथमश्मचित्तताम् ॥ १३ ॥

अयि दयानिधे ! मैं अत्यन्त दीन हूँ, दुरवस्थामें पड़ा हूँ और सभीने मेरा परित्याग कर दिया है—ऐसी दशामें भी आप मेरी ओर दृष्टिपात नहीं कर रहे हैं ! हाय ! आपने क्योंकर (मेरे प्रति) पत्थरका-सा कठोर हृदय बना लिया है ॥ १३ ॥

सुमहान्ति जगन्ति बिभ्रतस्तव यो नाविरभून्मनागपि ।
स कथं परमात्मदेहिनः परमाणोर्मम धारणे श्रमः ॥ १४ ॥

परमात्मस्वरूप आपको अत्यन्त विशाल लोकोंको धारण करते समय जो श्रम लेशमात्र भी नहीं हुआ, वह परिश्रम परमाणु-तुल्य मुझको धारण (स्वीकार) करनेमें कैसे हो रहा है ॥ १४ ॥

नितरां विनयेन पृच्छते सुविचार्योत्तरमत्र यच्छ मे ।
करितो गिरितोऽप्यहं गुरुस्त्वरितो नोद्धरसे यदद्य माम् ॥ १५ ॥

भगवन् ! मैं आपसे अत्यन्त नम्रतापूर्वक पूछ रहा हूँ, इस विषयमें आप भलीभाँति विचार करके मुझे उत्तर दीजिये—'क्या मैं गजराज अथवा गिरि गोवर्धनसे भी अधिक बोझिल हूँ, जो आज आप मेरा शीघ्र उद्धार नहीं कर रहे हैं ? ॥ १५ ॥

न धनं न च राज्यसम्पदो नहि विद्यामिदमेकमर्थये ।
मयि धेहि मनागपि करुणाभङ्गितरङ्गितां दृशम् ॥ १६ ॥

प्रभो ! न तो मैं धन चाहता हूँ, न राज्य-सम्पत्तिकी ही मुझे कामना है और न मैं विद्या ही माँग रहा हूँ । मैं केवल इस एक ही वस्तुकी याचना करता हूँ कि आप अपनी करुणाकी लहरसे लहराती हुई किंचिन्मात्र भी दृष्टि मुझपर डाल दीजिये ॥ १६ ॥

अयमत्यधमोऽपि दुर्गुणो दयनीयो भवता दयानिधे ।
वमतां फणिनां विषानलं किमु नानन्दयिता हि चन्दनः ॥ १७ ॥

दयासिन्धो ! यद्यपि यह जीव अत्यन्त अधम तथा दुर्गुणोंसे परिपूर्ण है, तथापि आपके लिये तो यह दयाका पात्र है ही । क्या चन्दन विषाग्नि उगलनेवाले सर्पोंको आनन्दित नहीं करता ? अर्थात् करता ही है ॥ १७ ॥

क्षुधितस्य नहि त्रपास्ति मे प्रतिरथ्यं प्रतिगृह्णतः कणान् ।
अकलङ्क यशस्करं न ते भवदीयोऽपि यदन्यमृच्छति ॥ १८ ॥

भूखसे व्याकुल हुए मुझे सड़कोंपर अन्न-कण ग्रहण करनेमें अर्थात् भीख माँगनेमें तो लज्जा नहीं है, परंतु निष्कलङ्क ! यह आपके लिये कीर्तिदायक नहीं है, जो आपका होकर भी कोई अन्यके पास जाय ॥ १८ ॥

नितरां नरकेऽपि सीदतः किमु हीनं गलितत्रपस्य मे ।
भगवन् कुरु सूक्ष्ममीक्षणं परतस्त्वां जनता किमालपेत् ॥ १९ ॥

मैं नरकमें पड़ा हुआ अत्यन्त कष्ट भोग रहा हूँ और लज्जाको मैंने तिलाञ्जलि दे रखी है, इससे अधिक मेरा क्या बिगड़ेगा । इसलिये भगवन् ! मुझपर सूक्ष्मदृष्टि डालिये अन्यथा जनता आपको क्या कहेगी । अर्थात् आपकी ही बदनामी होगी ॥ १९ ॥

नरके निजकर्मकल्पिता भजतो मे महतीरपि व्यथाः ।
इदमेकमसह्यमीक्षका यदनाथं निगदन्ति मां विभो ॥ २० ॥

विभो ! मैं नरकमें अपने कर्मद्वारा उपार्जित भीषण-से-भीषण यातनाएँ भोग रहा हूँ (इसका मुझे रंचमात्र भी दुःख नहीं है); किंतु मेरे लिये यह एक बात असह्य हो रही है कि दर्शकलोग (आप-जैसे स्वामीके रहते) मुझे अनाथ कह रहे हैं ॥ २० ॥

मृगदन्तिमुखान्मया सह प्रतिबद्धान् भवजालबन्धने ।
तव मामपहाय मुञ्चतः करुणा किं न भिनत्ति मानसम् ॥ २१ ॥

वानर-भालू, गजेन्द्र आदि मेरे साथ ही भवजालके बन्धनमें फँसे हुए थे, परंतु अकेले मुझे छोड़कर उन सबको तो आपने बन्धनमुक्त कर दिया । यों मेरा परित्याग करते आपके मनको करुणा क्यों नहीं विदीर्ण कर रही है ? ॥ २१ ॥

निरुपाधिजनार्तिहारिणं भगवंस्त्वामवगत्य तत्त्वतः ।
कृतपुण्यचयावहेलनं कथमब्जेक्षण मामुपेक्षसे ॥ २२ ॥

भगवन् ! आपको सचमुच निष्कपट जनोंका कष्टनिवारक समझकर (आपके भरोसे) मैंने ऐसे लोगोंकी भी अवहेलना कर दी, जिन्होंने राशि-राशि पुण्य किये हैं; किंतु कमलनयन ! अब आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं (जब मैं अपने असली रूपमें आपके सामने उपस्थित हूँ) ? ॥ २२ ॥

सततं निगमेषु शृण्वता वरद त्वां पतितानुपावनम् ।
पुरु पापमुपास्यतेऽनिशं त्वयि विश्वासधिया मया विभो ॥ २३ ॥

वरदायक ! मैं वेद-शास्त्रोंमें निरन्तर यह सुनता आ रहा हूँ कि आप पतित-पावन हैं । विभो ! आपके प्रति ऐसी विश्वास-बुद्धि करके (कि मुझ पतितका भी आप उद्धार करेंगे ही) मैं रात-दिन बड़े-से-बड़ा पापकर्म कर रहा हूँ ॥ २३ ॥

सुकृतं न कृतं पुरा कदाप्यथ सर्वं कृतमेव दुष्कृतम् ।
अधुना गलितह्रिया मया भगवंस्त्वां प्रति किं निगद्यताम् ॥ २४ ॥

भगवन्! पहले कभी मैंने उत्तम कर्म नहीं किया, सब-का-सब दुष्कर्म ही किया है। अब मैं निर्लज्ज होकर आपसे क्या निवेदन करूँ ? ॥ २४ ॥

मदकामविमोहमत्सरा रिपवस्त्वत्पुर एव विह्वलम्।
धृतशार्ङ्गगदारिनन्दक प्रतिकर्षन्ति कथं न लज्जसे ॥ २५ ॥

शार्ङ्गधनुष, कौमोदकी गदा, सुदर्शनचक्र और नन्दक खड्ग-जैसे अनेकों अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले स्वामिन्! मद, काम, विमोह, मत्सर आदि शत्रु आपके सामने ही मुझे विह्वल करके अपनी ओर खींच रहे हैं। (यह देखकर भी) आपको लज्जा क्यों नहीं आती ? ॥ २५ ॥

अयि गर्तमुखे गतः शिशुः पथिकेनापि निवार्यते जवात्।
जनकेन पतन् भवार्णवे न निवार्यो भवता कथं विभो ॥ २६ ॥

विभो! गड्ढेके निकट पहुँचे हुए शिशुको राहगीर भी तुरंत दौड़कर हटा देता है, परंतु आप मेरे पिता हैं और मैं भवसागरमें गिर रहा हूँ, फिर भी आप मेरा निवारण क्यों नहीं करते अर्थात् हाथ पकड़कर क्यों नहीं बचा लेते ? ॥ २६ ॥

सुकृतप्रिय मान्यथास्तु ते सुकृतिभ्यः सुखदश्च सुप्रथा।
अपि पापमबिभ्रतस्तु मां तव विश्वम्भर नाम दुर्लभम् ॥ २७ ॥

पुण्यकर्मोंके प्रेमी! आप पुण्यशीलोंको ही सुख देनेवाले हैं—आपकी यह उत्तम ख्याति भले ही झूठी न हो; परंतु यदि आप मुझ पापीका भरण-पोषण नहीं करेंगे तो आपके लिये 'विश्वम्भर' नाम दुर्लभ हो जायगा ॥ २७ ॥

वचनैः परुषैरिह प्रभो यदि रोषं समुपागतोऽसि मे।
मुखरं कृतकोटिकल्मषं करुणाब्धे जगतोऽपसारय ॥ २८ ॥

प्रभो! यदि मेरे कठोर वचनोंसे आप क्रुद्ध हो गये हों तो दयासिन्धो! करोड़ों पाप करनेवाले इस कटुभाषीको (दण्डस्वरूप अपने) संसारसे निकाल दीजिये अर्थात् भवसागरसे उसका उद्धार कर दीजिये ॥ २८ ॥

यदि वीक्ष्य ददासि मत्कृतिं न मयैव प्रतिगृह्यते तदा।
अथ चेन्निजमाशयं प्रभो परितुष्यञ्छिरसा वहामि तत् ॥ २९ ॥

प्रभो! यदि मेरी करनीपर दृष्टिपात करके आप मुझे कुछ देते हैं तो मैं स्वयं ही उसे ग्रहण नहीं करूँगा; और यदि अपने (उदार) आशयके अनुसार प्रदान करते हैं तो संतुष्ट होकर मैं उसे अपने सिरपर धारण करूँगा ॥ २९ ॥

पतितोऽप्यतिदुर्गतोऽपि सन्नकृतज्ञो निखिलागसां पदम्।
भवदीय इतीरयंस्त्वया दयनीयस्त्रपयैव केवलम् ॥ ३० ॥

मैं पतित हूँ, अतिशय दुर्गतिमें पड़ा हूँ, अकृतज्ञ हूँ और सम्पूर्ण पापोंका आश्रयस्थान हूँ; फिर भी 'मैं आपका हूँ'—यों कहता रहता हूँ; अतः आपको केवल अपने विरदकी लाज रखनेके लिये ही मुझपर दया करनी चाहिये ॥३०॥

सुकृतप्रकृतौ जने त्वया कृतया किं कृपया कृपानिधे।
यदि मादृशि सा विधीयते तव कीर्तिर्वद कीदृशी तदा ॥ ३१ ॥

दयानिधे! पुण्यशील प्रकृतिके जनोंपर आपके कृपा करनेसे क्या लाभ हुआ ? मुझ-जैसे पापीपर यदि वैसी कृपा की जाय तो बतलाइये, उस समय आपकी कैसी कीर्ति होगी अर्थात् आपकी विशेष यशोवृद्धि होगी ॥ ३१ ॥

अयि शैशवलालितः शिशुः प्रतिबुद्धो जनकेन ताड्यते।
न कदाप्यनुलालितस्त्वया किमु ताड्यो भगवन् कुकर्मभिः ॥ ३२ ॥

भगवन्! बचपनमें लाड़-प्यारसे पाला हुआ शिशु सयाना होनेपर पिताद्वारा ताडित किया जा सकता है; परंतु आपने तो कभी मेरा लाड़-प्यार नहीं किया; तब भला, कुकर्मोंद्वारा मैं ताड़नाका पात्र क्योंकर हूँ ? ॥ ३२ ॥

अहमेव हि दोषदूषितो भगवंस्त्वां समुपालभे मुधा।
रमणीविरहज्वरज्वलन्नमृतांशुं कुमतिर्विनिन्दति ॥ ३३ ॥

भगवन्! जैसे प्रियतमाके विरहज्वरसे संतप्त होता हुआ दुर्बुद्धि पुरुष चन्द्रमाकी निन्दा करता है, (अर्थात् जैसे कामी पुरुष संतप्त तो हो रहा है प्रियाके विरहज्वरसे और निन्दा करता है चन्द्रमाकी), उसी प्रकार दोषोंसे कलङ्कित तो मैं हूँ, किंतु व्यर्थ ही आपको उपालम्भ देता हूँ ॥ ३३ ॥

करुणाकर दुर्दशाकुलं पतितालम्बन पापपञ्जरम्।
अमृताम्बुनिधे महाज्वरं नहि जह्या जगदीश जातु माम् ॥ ३४ ॥

करुणाकर! दुर्दशाओंने मुझे व्याकुल कर दिया है। पतितालम्बन! मैं पापोंका पिंजड़ा हूँ। अमृताम्बुनिधे! मैं भीषण ज्वरसे ग्रस्त हूँ। ऐसी दशामें जगदीश! आप कदापि मेरा परित्याग न करें ॥ ३४ ॥

कटुजल्पनमल्पकस्य मे नहि ते कल्पयतु क्रुधं विभो।
कुपितातुरबालभाषितं किमु गृह्णन्ति मनाङ् महाशयाः ॥ ३५ ॥

विभो! मुझ तुच्छका कटुभाषण आपके कोपका कारण न बने अर्थात् मेरे कटुवचनोंसे आप कुपित न हों; क्योंकि उदारचेता लोग कहीं कुपित, रोगी तथा बालकके कथनपर जरा-सा भी ध्यान देते हैं? अर्थात् नहीं देते ॥ ३५ ॥

भुजगाहितकल्पितध्वज स्फुरदाशाभुजगालिवेल्लितम्।
जटिलज्वरकुञ्जराङ्कुश ज्वरजुष्टं न जहीहि जातु माम् ॥ ३६ ॥

गरुड़-चिह्नसे सुसजित ध्वजवाले भगवन्! चञ्चल आशारूपी सर्प-पङ्क्तिने मुझे आवेष्टित कर लिया है। विषमज्वररूपी हाथीके लिये अङ्कुशस्वरूप स्वामिन्! मैं महान् ज्वरसे ग्रस्त हूँ, ऐसी दशामें मेरा कदापि परित्याग न कीजिये ॥ ३६ ॥

न वदामि न दुष्कृतं मया कृतमित्युक्तिमिमां तु मे शृणु।
मम भीतिमनीनशद्विभो पतितोद्धारकनाम तावकम् ॥ ३७ ॥

'प्रभो! मैंने कोई दुष्कर्म नहीं किया है'—ऐसी बात मैं नहीं कहूँगा—कृपया मेरे इस निवेदनपर ध्यान दें; क्योंकि आपके 'पतितोद्धारक' नामने मेरे सम्पूर्ण भयका नाश कर दिया है ॥ ३७ ॥

अपि शर्वपितामहादिभिर्भजनीयः पुरुषोत्तमोऽपि यः।
तमुपालभमानमुद्धतं धिगिमं मां धिगिमां धियं मम ॥ ३८ ॥

जो पुरुषोत्तम हैं तथा शंकर और ब्रह्मा आदि देवगण भी जिनका भजन करते हैं, उनको मैं उपालम्भ देता हूँ! ऐसे मुझ उद्दण्डको धिक्कार है और मेरी इस बुद्धिको भी धिक्कार है ॥ ३८ ॥

अथ सर्वमिदं मयोज्झितं भवतोऽन्यन्नहि किंचिदर्थये।
मम मानसगोचरीभवत्वरविन्दाक्ष तवाद्भुतं वपुः ॥ ३९ ॥

अब मैंने इस सारे प्रपञ्चका परित्याग कर दिया है और आपके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तुके लिये प्रार्थना भी नहीं करता। अतः कमलनयन! आपका अद्भुत श्रीविग्रह मेरे मनमें प्रत्यक्ष प्रकट हो जाय ॥ ३९ ॥

हरिनीलमयावनीतले वरवृन्दाविपिने विलासिनि।
मणिमण्डपमध्यविस्फुरद्विबुधक्ष्मारुहमूलमाश्रितम् ॥ ४० ॥
शिखिपिच्छमहामणिस्फुरन्मुकुटाकुञ्चितकान्तकुन्तलम्।
कमनीयतरालकावलिभ्रमणभ्राजिललाटसुन्दरम् ॥ ४१ ॥

शरदिन्दुसहोदराननं दलदम्भोजपलाशलोचनम् ।
अरुणाधरकान्तिदन्तुरं स्फुटदन्तांशुविकासिताम्बरम् ॥ ४२ ॥
दरपाण्डुरगण्डमण्डलप्रतिसर्पत्कमनीयकुण्डलम् ।
मणिमौक्तिकमञ्जुमञ्जरीमहनीयद्युतिरञ्जितश्रुति ॥ ४३ ॥
पृथुवर्तुलमौक्तिकावलीसुषमावेल्लितकान्तकन्धरम् ।
हरिनीलगिरिद्युतिद्रुहा कमलामन्दिरवक्षसाञ्चितम् ॥ ४४ ॥
चरणाब्जनखावलम्बिनीं भुजगाकारभुजान्तरागताम् ।
निविडाभ्रमिव क्षणप्रभां बृहदुत्फुल्लवनामलस्रजम् ॥ ४५ ॥
मणिकङ्कणकान्तिमांसलं दरफुल्लाम्बुजसुन्दरद्युति ।
पतितोद्धरणे दृढव्रतं कमनीयं करयोर्युगं दधत् ॥ ४६ ॥
वररत्नमयाङ्गुलीयकावलिशोभामिलिताङ्गुलीगणैः ।
मुहुराकुलितेन वेणुना वशयत् प्राणभृतां मनः श्रुतीः ॥ ४७ ॥
उदरद्युतिनिम्नगोच्छलल्लहरीरूपकरोमराजिकम् ।
पशुपालविलासिनीलसन्नयनाकर्षणनाभिनिम्नितम् ॥ ४८ ॥
कनकद्रवगौरमम्बरं दधदूरुद्वितयेन सुन्दरम् ।
उदयन्मणिनूपुरप्रभासरणिश्रेणिजटालजानुकम् ॥ ४९ ॥
अरिगीर्णगजेन्द्रगोपने दधता जाङ्घिकतामलौकिकीम् ।
त्रिजगन्महनीयमूर्तिना वरजङ्घायुगलेन शोभितम् ॥ ५० ॥
कुलिशाङ्कुशवारिजध्वजाम्बुजचक्राद्यभिरामलक्ष्मणा ।
अरुणारुणकोमलत्विषा कमनीयेन तलेन राजितम् ॥ ५१ ॥
विधिशर्वमुखामरावलीमुकुटोच्चिद्रमणिप्रभाकुलम् ।
नखचन्द्रमयूखमूर्छिताखिलतापं पदयोर्युगं दधत् ॥ ५२ ॥

जिसका धरातल इन्द्रनीलमणिका बना हुआ है, उस विलासशाली सर्वश्रेष्ठ वृन्दावनमें मणिमय मण्डपके मध्य लहराते हुए सुरद्रुम—कल्पतरुके नीचे आपका वह श्रीविग्रह विराजित है। उसके घुँघराले काकुल मयूर-पिच्छ और बहुमूल्य मणियोंद्वारा निर्मित आबदार मुकुटसे अत्यन्त कमनीय लग रहे हैं। सुन्दर ललाट अतिशय सुन्दर जुल्फोंके लहरानेसे अत्यन्त सुहावना प्रतीत हो रहा है। मुख तो मानो शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाका सहोदर भाई है। विकसित कमलदल-से नेत्र हैं। लाल-लाल होठोंकी कान्ति छिटक रही है। स्पष्ट झलकती हुई दन्तावलीकी किरणोंसे पीताम्बर विशेषरूपसे चमक रहा है। शङ्खके समान पाण्डुर—रक्त-मिश्रित श्वेत वर्णके कपोलोंपर मनोहर कुण्डल झलमला रहे हैं। कान मणि और मुक्ताकी बनी हुई मनोज्ञ मञ्जरियोंकी उत्कृष्ट कान्तिसे अनुरञ्जित हैं। सुन्दर ग्रीवा बड़े-बड़े एवं गोलाकार मोतियोंके हारकी शोभासे वेष्टित है। श्रीविग्रह इन्द्रनीलमणिके पर्वतकी आभासे स्पर्धा करनेवाली तथा लक्ष्मीकी निवासस्थान-भूता छातीसे सुशोभित है। भुजगाकार भुजाओंके अन्तरालमें एक बड़े तथा प्रफुल्लित वन्य पुष्पोंकी श्वेत वनमाला पड़ी है, जो चरण-कमलोंके नख-पर्यन्त लटक रही है और ऐसी चमक रही है मानो घने बादलके बीच बिजली कौंध रही हो। अर्द्धविकसित कमल-पुष्पकी-सी सुन्दर आभावाले कमनीय कर-युगल हैं, जो मणिनिर्मित कङ्कणोंकी कान्तिसे परिपुष्ट हैं और पतितोंका उद्धार करनेका दृढ़ व्रत लिये हुए हैं। बहुमूल्य-रत्नजटित अँगूठियोंकी शोभासे संयुक्त अँगुलियोंके द्वारा बारंबार बजाये जानेवाली बाँसुरीसे प्राणियोंके मन और कानोंको मोहित कर रहे हैं। उदर-कान्तिरूपिणी सरिता ऊपरको उछलती हुई लहरियोंके

समान रोमावलीसे विभूषित है। गोपाङ्गनाओंके सुन्दर नेत्रोंको बरबस अपनी ओर खींच लेनेवाली गम्भीर नाभि है। दोनों ऊरुओंपर द्रवीभूत सुवर्णके सदृश वर्णका सुन्दर पीताम्बर सुशोभित है। घुटने मणिनिर्मित नूपुरोंकी छिटकती हुई प्रभाराशिसे परिव्याप्त हैं। ग्राहरूपी शत्रुके द्वारा निगले जाते हुए गजेन्द्रकी रक्षाके लिये दौड़ते समय जिन्होंने अलौकिक वेगका परिचय दिया तथा जिनका गठन त्रिलोकीके लिये गौरवपूर्ण है, ऐसी दो श्रेष्ठ पिंडलियोंसे उनका श्रीविग्रह शोभित है। उनके सुन्दर तलवे वज्र, अङ्कुश, मत्स्य, ध्वज, कमल और चक्र आदि रमणीय चिह्नोंसे युक्त तथा लाल-लाल कोमल कान्तिसे विभूषित हैं। उनके चरण-युगल ब्रह्मा-शंकर आदि देवगणोंके मुकुटोंमें जड़ी हुई मणियोंकी फैली हुई प्रभासे परिव्याप्त तथा नख-चन्द्रोंकी किरणोंसे ताप शान्त करनेवाले हैं ॥ ४०—५२ ॥

सरतः सरणौ सतो बहिः स्वपतो वालपतो गृहान्तरे।
वपुरीदृशमीश तावकं हृदयालम्बनमस्तु मे सदा ॥ ५३ ॥

ईश! आपका वह श्रीविग्रह, चाहे मैं बाहर मार्गमें विचरता रहूँ अथवा घरके भीतर शयन या वार्तालाप ही क्यों न करता रहूँ, किसी भी दशामें सदा मेरे हृदयका आलम्बन बना रहे ॥ ५३ ॥

नवनीरदनीलिमद्युतिर्नमनीयो निगमैर्निरन्तरम्।
निरये निपतन्तमाशु मां नयनेनापि सनाथयेद्विभुः ॥ ५४ ॥

प्रभो! आप सर्वव्यापक हैं, नवीन बादलकी-सी नीली आपकी कान्ति है और वेद निरन्तर आपको नमस्कार करते रहते हैं। मैं नरकमें गिर रहा हूँ, मुझे शीघ्र ही अपने नेत्रोंसे निहारकर सनाथ करें ॥ ५४ ॥

प्रणिपत्य हरे भवन्तमद्धा विनिबद्धाञ्जलिरेकमेव याचे।
जनिरस्तु कुले कृषीवलानामपि गोविन्दपदारविन्दभावः ॥ ५५ ॥

हरे! मैं दोनों हाथ जोड़कर और आपके चरणोंमें पड़कर केवल एक ही याचना करता हूँ कि भले ही मेरा जन्म किसानोंके कुलमें हो, परंतु वहाँ भी मेरा आप गोविन्दके चरण-कमलोंमें अनुराग बना रहे ॥ ५५ ॥

वाचा निर्मलया सुधामधुरया यां नाथ शिक्षामदा-
स्तां स्वप्नेऽपि न संस्मराम्यहमहंभावावृतो निस्त्रपः।
इत्यागःशतशालिनं पुनरपि स्वीयेषु मां बिभ्रत-
स्त्वत्तो नास्ति दयानिधिर्यदुपते मत्तो न मत्तः परः ॥ ५६ ॥

नाथ! मैं ऐसा अहंकारी और निर्लज्ज हूँ कि आपने सुधा-सदृश मधुर एवं निर्मल वाणीद्वारा मुझे जो शिक्षा दी थी, उसका मैं स्वप्नमें भी स्मरण नहीं करता। यों सैकड़ों अपराध करनेवाले मुझको फिर भी आप अपने निजजनोंमें स्थान दे रहे हैं। ऐसी दशामें यदुपते! आपसे बढ़कर तो कोई दयालु नहीं है और मुझसे बढ़कर कोई उन्मत्त नहीं है॥ ५६ ॥

पातालं व्रज याहि वा सुरपुरीमारोह मेरोः शिरः
पारावारपरम्परां तर तथाप्याशा न शान्ता तव।
आधिव्याधिजरापराहत यदि क्षेमं निजं वाञ्छसि
श्रीकृष्णेति रसायनं रसय रे शून्यैः किमन्यैः श्रमैः ॥ ५७ ॥

रे आधि (मानसिक पीड़ा), व्याधि (शारीरिक पीड़ा) और जरा (बुढ़ापा) से आक्रान्त मानव! चाहे तू पातालमें चला जा या तुझे सुरपुरी अमरावतीकी प्राप्ति हो जाय अथवा तू सुमेरुगिरिके शिखरपर चढ़ जा या अगाध महासागरोंकी परम्पराको पार कर ले, तथापि तेरी आशा शान्त नहीं हो सकती; अतः यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो श्रीकृष्ण-नाम रूपी रसायनका स्वाद ले, अन्य (निष्फल) परिश्रमोंसे क्या लाभ! ॥ ५७ ॥

वज्रं पापमहीभृतां भवमहारोगस्य सिद्धौषधं
मिथ्याज्ञाननिशाविशालतमसस्तिग्मांशुबिम्बोदयः।

क्रूरक्लेशमहीरुहासुरुतरज्वालाजटालः शिखी
द्वारं निर्वृतिसद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णद्वयम् ॥ ५८ ॥

जो पापरूपी पर्वतोंको चूर्ण करनेके लिये वज्र, जन्म-मरणरूप महान् रोगका विनाश करनेके लिये सिद्धौषध, मिथ्या-ज्ञानरूपी रात्रिके घोर अन्धकारको दूर करनेके लिये सूर्योदय, कठोर कष्टरूपी वृक्षोंको भस्म करनेके लिये प्रचण्ड ज्वालासे संयुक्त अग्नि और निर्वृति (शान्ति) रूपी भवनका द्वार है, वह 'कृष्ण'—यह दो अक्षरोंका नाम सर्वोपरि है ॥ ५८ ॥

विशालविषयाटवीवलयलग्नदावानल-
प्रसृत्वरशिखावलीविकलितं मदीयं मनः ।
अमन्दमिलदिन्दिरे निखिलमाधुरीमन्दिरे
मुकुन्दमुखचन्द्रिरे चिरमिदं चकोरायताम् ॥ ५९ ॥

प्रभो ! मेरा मन विषयरूपी विशाल वनके चारों ओर लगे हुए दावानलकी चतुर्दिक् फैलनेवाली लपटोंसे झुलसकर व्याकुल हो गया है । अब यह अत्यन्त शोभाशाली एवं सम्पूर्ण मधुरिमाके निवासस्थानभूत मुकुन्दके मुखचन्द्रकी ओर चिरकालतक चकोरकी भाँति दृष्टि लगाये रहे । (इसीसे इसे शान्ति मिलेगी) ॥ ५९ ॥

सुरस्रोतस्विन्याः पुलिनमधितिष्ठन् नयनयो-
र्विधायान्तर्मुद्रामथ सपदि विद्राव्य विषयान् ।
विधूतान्तर्ध्वान्तो मधुरमधुरायां चिति कदा
निमग्नः स्यां कस्यांचन नवनभस्याम्बुदरुचि ॥ ६० ॥

भगवन् ! कब मैं सुरनदी गङ्गाके तटपर बैठकर तत्काल समस्त विषयोंसे मुख मोड़ लूँगा और नेत्रोंको भीतरकी ओर करके अर्थात् मूँदकर तथा हृदयके अन्धकारको दूर करके भाद्रपदमासके नवीन बादलकी-सी कान्तिवाले किसी परम मधुर चिद्ब्रह्ममें निमग्न होऊँगा ॥ ६० ॥

इमां वै विष्णुलहरीं जगन्नाथेन निर्मिताम् ।
यः पठेत् तस्य सर्वत्र जायन्ते जयसम्पदः ॥ ६१ ॥

॥ इति पण्डितराजश्रीजगन्नाथविरचिता श्रीविष्णुलहरी समाप्ता ॥

जो महाकवि जगन्नाथद्वारा विरचित इस 'विष्णुलहरी'को पढ़ेगा, उसे सर्वत्र विजय और सम्पत्तिकी प्राप्ति होगी ॥ ६१ ॥

अच्युतानन्तगोविन्दनामरूपी महामन्त्र

अच्युतानन्त गोविन्द इति नामत्रयं हरेः । यो जपेत्प्रयतो भक्त्या प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम् ॥
तस्य मृत्युभयं नास्ति विषरोगाग्निजं महत् । नामत्रयं महामन्त्रं जपेद् यः प्रयतात्मवान् ॥
कालमृत्युभयं चापि तस्य नास्ति किमन्यतः ।

(पद्मपुराण, उत्तर० २६० । १९–२१)

'जो एकाग्रचित्त हो श्रीहरिके अच्युत, अनन्त और गोविन्द—इन तीन नामोंका आदिमें 'प्रणव' और अन्तमें 'नमः' जोड़कर (ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः—) इस रूपमें भक्तिपूर्वक जप करता है, उसे विष, रोग और अग्निसे होनेवाली मृत्युका महान् भय प्राप्त नहीं होता । जो इस तीन नामरूपी महामन्त्रका एकाग्रतापूर्वक जप करता है, उसे काल और मृत्युसे भी भय नहीं होता, फिर दूसरोंसे भय होनेकी तो बात ही क्या है ।*

* व्याधिकालमें इस मन्त्रका स्वयं जप करनेसे अथवा रोगीके समीप बैठकर किसी दूसरेके द्वारा जप किये जानेपर व्याधिका शमन होते हुए देखा गया है ।—सम्पादक

धर्मव्याधकृत श्रीविष्णुस्तुति

नमामि विष्णुं त्रिदशारिनाशनं विशालवक्षःस्थलसंश्रितश्रियम् ।
सुशासनं नीतिमतां परां गतिं त्रिविक्रमं मन्दरधारिणं सदा ॥
दामोदरं निर्जितभूतलं धिया यशोंऽशुशुभ्रं भ्रमराङ्गसप्रभम् ।
भवे भवं दैत्यरिपुं पुरुष्टुतं नमामि विष्णुं शरणं जनार्दनम् ॥
त्रिधा स्थितं तिग्मरथाङ्गधारिणं नयस्थितं युक्तमनुत्तमैर्गुणैः ।
निःश्रेयसाख्यं क्षयितेतरं गुरुं नमामि विष्णुं पुरुषोत्तमं त्वहम् ॥
महावराहो हविषां भुजो जनो जनार्दनो मे हितकृच्चतुर्मुखः ।
महीधरो मामुदधिप्लवे महान् स पातु विष्णुः शरणार्थिनं तु माम् ॥
मायाततं येन जगत्त्रयं कृतं यथाग्निनैकेन ततं चराचरम् ।
चराचरश्च स्वयमेव सर्वतः स मेऽस्तु विष्णुः शरणं जगत्पतिः ॥
भवे भवे यश्च ससर्ज 'कं ततो जगत् प्रसूतं सचराचरं त्विदम् ।
ततश्च रुद्रात्मवति प्रलीयते ततो हरिर्ब्रह्महरस्तथोच्यते ॥
रवीन्दुपृथ्वीपवनाग्निभास्करा जलं च यस्य प्रभवन्ति मूर्तयः ।
स सर्वदा मे भगवान् सनातनो ददातु शं विष्णुरचिन्त्यरूपधृक् ॥

(वराहपुराण, ८ । ४३—४९)

जो देवताओंके शत्रुभूत राक्षसोंका संहार करनेवाले हैं, जिन्होंने अपने विशाल वक्षःस्थलपर लक्ष्मीको आश्रय प्रदान कर रखा है, जिनका शासन परम उत्तम है, जो नीतिज्ञोंकी परम गति हैं, जिन्होंने वामनरूपसे तीन ही डगोंसे ब्रह्माण्डतक नाप लिया था और समुद्र-मन्थनके समय जिन्होंने कूर्मरूपसे अपनी पीठपर मन्दराचलको धारण किया था, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। यशोदा मैयाद्वारा जिनके उदरमें रस्सी बाँधी गयी थी, जिन्होंने अपनी बुद्धिसे सारे धरामण्डलको जीत लिया था, जो अपने यशकी किरणोंसे प्रकाशित होते हैं, जिनके शरीरकी भ्रमरकी-सी नीली कान्ति है, जो समय-समयपर संसारमें अवतार लेते हैं, दैत्योंके शत्रु हैं, इन्द्रादि देवताओंद्वारा जिनकी स्तुति की गयी है और जो भक्तजनोंके आश्रयस्थान हैं, उन जनार्दन विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जो तीन प्रकारसे—ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूपसे अथवा त्रिभङ्गललितरूपसे विराजमान हैं, जिनके हाथमें तीक्ष्णधार चक्र सुशोभित है, जो नीति-मार्गपर स्थित हैं, सर्वोत्कृष्ट गुणोंसे युक्त हैं, मोक्षरूपसे जिनकी प्रसिद्धि है, जो अविनाशी और सब विद्याओंका उपदेश करनेवाले हैं, उन पुरुषोत्तम विष्णुका मैं अभिवादन करता हूँ। जिन्होंने हिरण्याक्षका वध करनेके लिये महावराहरूप धारण किया था, जो हविर्भोजी अग्निके प्रियजन हैं, स्वजनोंकी पीड़ा नष्ट करनेवाले हैं, मेरे हितकारी हैं, (ब्रह्माके रूपमें) जिनके चार मुख हैं और जिन्होंने प्रलय-पयोधिमें मग्न हुई पृथ्वीका (वराहरूपसे) उद्धार किया था, वे महिमाशाली विष्णु मुझ शरणार्थीकी रक्षा करें। जिस प्रकार अकेले अग्निसे चराचर जगत् व्याप्त है, उसी तरह जिन्होंने स्वयं ही चराचरसे व्याप्त त्रिलोकीको सब ओरसे मायाद्वारा आच्छादित कर रखा है तथा जो स्वयं चराचररूपमें स्थित हैं, वे जगदीश्वर विष्णु मेरे आश्रयदाता हों। प्रत्येक सृष्टिके आरम्भमें जो ब्रह्माको उत्पन्न करते हैं, जिन ब्रह्मासे यह चराचर जगत् प्रकट हुआ है और तदनन्तर यह विश्व रुद्ररूप आपमें विलीन हो जाता है, इसी कारण श्रीहरि, ब्रह्मा और शंकर—इन दोनों रूपोंमें कहे जाते हैं—यही नहीं, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, पवन, अग्नि और जल जिनकी मूर्तिरूपमें प्रकट होते हैं, जो मन-बुद्धिसे परे—कल्पनातीत रूप धारण करनेवाले, अविनाशी और षडैश्वर्यसम्पन्न हैं, वे विष्णु मुझे शाश्वती शान्ति प्रदान करें।

श्रीतुलसीदासकृत श्रीनर-नारायणस्तुति

नौमि नारायणं, नरं करुणायनं, ध्यान-पारायणं, ज्ञानमूलं।
अखिल-संसार-उपकार-कारण, सदयहृदय, तपनिरत, प्रणतानुकूलं॥ १॥
श्याम नव तामरस दामद्युति वपुष, छवि कोटि मदनार्क अगणित प्रकाशं।
तरुण रमणीय राजीव लोचन ललित, वदन राकेश, कर-निकर हासं॥ २॥
सकल सौंदर्य-निधि, विपुल गुण धाम, विधि-वेद-बुध-शंभु-सेवित, अमानं।
अरुण पद कंज-मकरंद मंदाकिनी मधुप मुनिवृन्द कुर्वन्ति पानं॥ ३॥
शक्र-प्रेरित घोर मदन मद भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी।
मार्कण्डेय मुनिवर्य हित कौतुकी बिनहि कल्पांत प्रभु प्रलयकारी॥ ४॥
पुण्य वन शैल सरि बद्रिकाश्रम सदासीन पद्मासनं, एक रूपं।
सिद्ध-योगींद्र-वृंदारकानंदप्रद, भद्रदायक दरस अति अनूपं॥ ५॥
मान मनभंग चितभंग मद, क्रोध-लोभादि पर्वत दुर्ग, भुवन भर्त्ता।
द्वेष-मत्सर-राग प्रबल प्रत्यूह प्रति भूरि निर्दय, क्रूर कर्मकर्त्ता॥ ६॥
विकटतर वक्र क्षुरधार प्रमदा, तीव्र-दर्प कंदर्प खर खड्गधारा।
धीर-गंभीर-मन-पीर-कारक, तत्र के वराका वयं विगत सारा॥ ७॥
परम दुर्घट पथ, खल-असंगत-साथ, नाथ! नहिं हाथ वर विरति-यष्टी।
दर्शनारत दास, त्रसित माया-पास, त्राहि हरि, त्राहि हरि दास-कष्टी॥ ८॥
दासतुलसी दीन धर्म-संबल-हीन, श्रमित अति खेद, मति मोह नाशी।
देहि अवलंब न विलंब अंभोज-कर, चक्रधर! तेज-बल-शर्म-राशी॥ ९॥

(विनयपत्रिका ६०)

मैं उन श्रीनर-नारायणको नमस्कार करता हूँ; जो करुणाके स्थान, ध्यानके परायण और ज्ञानके कारण हैं; जो समस्त संसारका उपकार करनेवाले, दयार्द्र-हृदय, तपस्यामें लगे हुए तथा शरणागत भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं; जिनके शरीरकी कान्ति नवीन-नील कमलोंकी मालाकी-सी है; जिनका सौन्दर्य करोड़ों कामदेवोंके सदृश और प्रकाश अगणित सूर्योंके समान है; नव-विकसित सुन्दर कमलोंके समान जिनके मनोहर नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है और चन्द्रमाकी किरणोंके समान जिनकी मन्द मुसकान है; जो समस्त सुन्दरताके भंडार, अनेक दिव्य गुणोंके स्थान और ब्रह्मा, वेद, विद्वान् और शिवजीद्वारा सेवित होनेपर भी मानरहित हैं; जिनके लाल-लाल चरण-कमलोंसे प्रकट हुए मन्दाकिनी (गङ्गाजी) रूपी मकरन्दका मुनिरूपी भौंरे सदा पान करते हैं; जो इन्द्रके द्वारा भेजे गये भीषण कामदेवके मदका मर्दन करनेवाले, क्रोधरहित, शुद्ध-बोधस्वरूप और ब्रह्मचारी हैं; जिन्होंने अपनी सामर्थ्यसे बिना ही कल्पान्तके मार्कण्डेय मुनिको दिखानेके लिये प्रलयकालकी लीला की थी; जो पवित्र वन, पर्वत और नदियोंसे पूर्ण बदरिकाश्रममें सदा पद्मासन लगाये एकरूपसे (अटल) विराजमान रहते हैं; जिनका अत्यन्त अनुपम दर्शन सिद्ध योगीन्द्र और देवताओंको भी आनन्द और कल्याण देनेवाला है। हे विश्वम्भर! वहाँ आपके बदरिकाश्रमके मार्गमें 'मनभंग' नामक पर्वत है, (जिसे देखकर लोग आगे बढ़नेसे हिचकते हैं) और यहाँ मेरे हृदयमें अभिमानरूपी मनभंग है (जिससे साधनका उत्साह भंग हो जाता है); वहाँ 'चित्तभंग' पर्वत है, तो यहाँ मद ही चित्तभङ्गका काम करता है; वहाँ जैसे कठिन-कठिन पर्वत हैं, तो यहाँ काम-लोभादि कठिन पर्वत हैं। (वहाँ जैसे हिंसक पशु आदि

सब विघ्न हैं तो) यहाँ रोग, द्वेष, मत्सर आदि अनेक बड़े-बड़े विघ्न हैं, जिनमेंसे प्रत्येक बड़ा निर्दय और कुटिल कर्म करनेवाला है । यहाँ कामिनीकी अत्यन्त बाँकी चितवन ही छूरेकी भयंकर धार और अत्यन्त घमंडी काम ही तलवारकी तेज धार है, जो बड़े-बड़े धीर और गम्भीर पुरुषके मनको भी पीड़ा पहुँचानेवाली है, फिर हम-सरीखे निर्बलोंकी तो गिनती ही क्या है । हे नाथ ! प्रथम तो यह आपके दर्शनका मार्ग ही बड़ा कठिन है, फिर दुष्ट और नीचोंका (मेरा) साथ हो गया है, सहारेके लिये हाथमें वैराग्यरूपी लकड़ी भी नहीं है । यह दास आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है, परंतु मायाके फंदेमें फँसकर दुःखी हो रहा है । हे नाथ ! दासके कष्टको दूर कर इसकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । मुझ दीन तुलसीदासके पास धर्मरूपी मार्गका आहार भी नहीं है, मैं थककर बड़ा दुःखी हो रहा हूँ । मोहने मेरी बुद्धिका भी नाश कर दिया है। अतएव हे चक्रधारी ! मुझे बिना विलम्ब अपने कर-कमलका सहारा दीजिये । आप तेज, बल और सुखकी राशि हैं ।

'वन्दे विष्णुं जगदाधारम्'

(रचयिता—पं० श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र', शास्त्री, नव्य-व्याकरणाचार्य)

खगपतियानमहीन्द्रशयानं
वरविज्ञानविधाननिधानम् ।
करुणापारावारमपारं
वन्दे विष्णुं जगदाधारम् ॥

गरुड़वाहन, शेषशायी, श्रेष्ठ विज्ञानसम्बन्धी नियमोंके भंडार, करुणाके अपार समुद्र, जगदाधार भगवान् विष्णुकी मैं वन्दना करता हूँ ।

मृगमदतिलकविभूषितभालं
परिधृतपीतवसनवनमालम् ।
नीलमहाछविजलदाकारं
वन्दे विष्णुं जगदाधारम् ॥

जिनके ललाटपर कस्तूरीका तिलक सुशोभित हो रहा है, जिन्होंने पीताम्बर तथा वनमाला (तुलसीसहित पञ्चपुष्पोंकी माला) धारण कर रखी है, तथा जो अत्यन्त सुन्दर नीलमेघ-की-सी छबि धारण किये हुए हैं, मैं उन जगदाधार भगवान् विष्णुकी वन्दना करता हूँ ।

सुभगचतुर्भुजधरगतकामं
करदरचक्रगदाब्जललामम् ।
विधृतमुकुटकुण्डलमणिहारं
वन्दे विष्णुं जगदाधारम् ॥

जिनके चार सुडौल भुजाएँ हैं, हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा एवं श्रेष्ठ पद्म सुशोभित हैं, जिन्होंने मस्तकपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल तथा वक्षःस्थलपर मणियोंका हार धारण कर रखा है और जो समस्त कामनाओंसे शून्य हैं, मैं उन जगदाधार भगवान् विष्णुकी वन्दना करता हूँ ।

पुरुषपुरातनपरमपुनीतं
निगमागमपुराणगणगीतम् ।
अजरमगोचरमजरविकारं
वन्दे विष्णुं जगदाधारम् ॥

जो परम पुनीत पुराणपुरुष हैं, जिनकी गुणावली आगम, निगम एवं पुराणोंद्वारा गायी गयी है, जो अजर (जरावस्थाशून्य), अगोचर तथा निर्विकार हैं, मैं उन जगदाधार भगवान् विष्णुकी वन्दना करता हूँ ।

विविधविभाकरभासितभासं
सकलसुधाकरसममृदुहासम् ।
विबुधवरेण्यशरण्यमुदारं
वन्दे विष्णुं जगदाधारम् ॥

जिनमें अनेक सूर्योंका प्रकाश है, जिनकी मृदुल हँसी पूर्णिमाके चन्द्रके समान आह्लादजनक है, जो देवताओंमें श्रेष्ठ एवं परमोदार शरणदाता हैं, मैं उन जगदाधार भगवान् विष्णुकी वन्दना करता हूँ ।

शत्रुमित्रगतभेदविहीनं
सततमलौकिकचरितनवीनम् ।
शुभमतिभुक्तिमुक्तिदातारं
वन्दे विष्णुं जगदाधारम् ॥

जिनमें शत्रु-मित्रादिका कोई भेद नहीं, जिनका चरित्र अलौकिक एवं नित्य नवीन है, जो पवित्र मति एवं भोग-मोक्षके दाता हैं, उन जगदाधार भगवान् विष्णुकी मैं वन्दना करता हूँ ।

श्रीहरिः

भारतीय संस्कृतिके तीन अनमोल ग्रन्थ

'कल्याण' वर्ष ४४-४५ के दो विशेषाङ्कों और एक साधारण मासिक अङ्कमें तीन दुर्लभ एवं अनुपम ग्रन्थोंका समावेश—

(१) अग्निपुराण–(सम्पूर्ण) केवल भाषा, पृष्ठ-संख्या ६८८, बहुरंगे चित्र २१, रेखा-चित्र २०।

(२) श्रीगर्ग-संहिता–(सम्पूर्ण) केवल भाषा, पृष्ठ-संख्या ५०४, बहुरंगे चित्र ३१, रेखा-चित्र १९।

(३) श्रीनरसिंहपुराण–(सम्पूर्ण) सानुवाद, पृष्ठ-संख्या २७४, बहुरंगे चित्र २।

(तीनों ग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर समझनेके लिये टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं।)

उक्त दोनों विशेषाङ्कोंका मूल्य ९.००+१०.००=१९.०० रुपये होता है, परंतु दोनों एक साथ मँगानेपर केवल १५.०० रुपये। (डाकखर्च हमारा होगा।)

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क

(१) ३७वें वर्षका संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त-पुराणाङ्क–पृष्ठ-संख्या ६८२, मूल्य ७.५०

(भगवान् श्रीराधा-माधवकी मधुर लीलाएँ)

(२) ४३वें वर्षका परलोक और पुनर्जन्माङ्क–पृष्ठ-संख्या ६९६, सजिल्द, मूल्य १०.५०

(परलोक और पुनर्जन्मसम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातें)

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

The Kalyāṇa-Kalpataru

Old monthly issues for sale at a highly reduced price, *viz.* Rs. 5.00 only instead of Rs. 13.72 as under (Postage Free):—

VOL.	Issues Nos.	Original Price Rs.
VOL. 30	1 to 11	3.85
VOL. 31	1 to 11	3.85
VOL. 32	1 to 11	3.85
VOL. 13	10	0.31
VOL. 14	2	0.31
VOL. 24	1, 2	0.62
VOL. 28	1	0.31
VOL. 29	1, 2	0.62
		Total Rs. 13.72

(In all 40 issues containing 1280 pages of printed matter and 40 Tri-coloured pictures of Lord Viṣṇu, Rāma, Kṛṣṇa and Śiva, as well as of Śakti etc.)

Manager, Kalyāṇa-Kalpataru
P. O. Gita Press (Gorakhpur)

सूचना—स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी दिनाङ्क १७–४–७३ के लगभग गीता-भवन पहुँचनेकी बात है। पहली सूचना १४–४–७३ की थी।

'हरेर्नामैव केवलम्'

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम् ।
पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम् ॥ १ ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥ २ ॥
स गुरुः स पिता चापि सा माता बान्धवोऽपि सः ।
शिक्षयेच्चेत्सदा स्मर्तुं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ३ ॥
निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति ।
कीर्तनीयमतो बाल्याद्धरेर्नामैव केवलम् ॥ ४ ॥
हरिः सदा वसेत्तत्र यत्र भागवता जनाः ।
गायन्ति भक्तिभावेन हरेर्नामैव केवलम् ॥ ५ ॥
अहो दुःखं महादुःखं दुःखाद् दुःखतरं यतः ।
काचार्थं विस्मृतं रत्नं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ६ ॥
दीयतां दीयतां कर्णो नीयतां नीयतां वचः ।
गीयतां गीयतां नित्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ७ ॥
तृणीकृत्य जगत्सर्वं राजते सकलोपरि ।
चिदानन्दमयं शुद्धं हरेर्नामैव केवलम् ॥ ८ ॥

इति श्रीकैवल्याष्टकं सम्पूर्णम् ।

केवल हरिका नाम ही मधुरसे भी मधुर, मङ्गलमयसे भी मङ्गलमय और पवित्रसे भी पवित्र है॥१॥ ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब (तृण) पर्यन्त सारा संसार मायामय है, केवल हरिका नाम ही सत्य है, नाम ही सत्य है, फिर भी (कहता हूँ कि) नाम ही सत्य है॥२॥ जो सर्वदा केवल हरिनाम-स्मरण करना ही सिखलाता है, वही गुरु है, वही पिता है, वही माता है और बन्धु भी वही है ॥ ३ ॥ श्वासका कुछ विश्वास नहीं, न मालूम कब रुक जायगा; इसलिये बाल्यावस्थासे ही केवल हरिनामका ही कीर्तन करना चाहिये ॥ ४ ॥ जहाँ भक्तजन भक्तिभावसे केवल हरिनामका ही गान करते हैं, वहाँ सर्वदा भगवान् विराजते हैं ॥५॥ अहो ! महान् दुःख है ! भयंकर कष्ट है !! सबसे बढ़कर शोककी बात है, जो विषयरूपी काचके लिये हरिनामरूपी रत्नको विसार दिया ॥ ६ ॥ केवल हरिनामके ही श्रवणमें कान लगाओ, वाणीसे हरिनाम ही बोलो और हरिनामका ही निरन्तर गान करो ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण जगत्को तृणतुल्य करके, सबके ऊपर केवल एक हरिका शुद्ध सच्चिदानन्दघन नाम ही विराजता है ॥ ८ ॥